...के उद्देश्य

...भाषा का संरक्षण तथा प्रसार।

...अंगों का विवेचन।

...स्कृति का अनुसंधान।

...विज्ञान और कला का पर्यालोचन।

सूचना

१—प्रति वर्ष, सौर वैशाख से चैत्र तक पत्रिका के चार अंक प्रकाशित होते हैं।

२—पत्रिका में उपर्युक्त उद्देश्यों के अंतर्गत सभी विषयों पर सप्रमाण और सुविचारित लेख प्रकाशित होते हैं।

३—पत्रिका के लिये प्राप्त लेखों की प्राप्तिस्वीकृति शीघ्र की जाती है और उनकी प्रकाशन संबंधी सूचना एक मास में भेजी जाती है।

४—लेखों की पांडुलिपि कागज के एक ओर लिखी हुई, स्पष्ट एवं पूर्ण होनी चाहिए। लेख में जिन ग्रंथादि का उपयोग या उल्लेख किया गया है, उनका संस्करण और पृष्ठादि सहित स्पष्ट निर्देश होना चाहिए।

५—पत्रिका में समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। उनकी प्राप्तिस्वीकृति पत्रिका में यथासंभव शीघ्र प्रकाशित होती है। परंतु संभव है उन सभी की समीक्षाएँ प्रकाशित न हों।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ७०
संवत् २०२२
अंक १

वार्षिक मू० १०.००
इस अंक का २.५०

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

विषय सूचि

नागरीप्रचारिणी पत्रिका

वर्ष ७०] वैशाख, संवत् २०२२ [अंक १

हिंदी नाट्यसाहित्य में चित्रित महाराष्ट्र का इतिहास

[परशुराम शा० भुपटकर]

•

हिंदी नाट्यसाहित्य में महाराष्ट्र के इतिहास से संबद्ध निम्नलिखित नाटक उपलब्ध होते हैं :

क. छत्रपति शिवाजी महाराज

१. सरजा शिवाजी—श्री गोपालचंद्र देव
२. छत्रपति शिवाजी—श्री० गुरशरणसिंह वर्मा 'आनंद'
३. सिंहगढ़ विजय—श्री० बैजनाथ राय
४. शिवाजी—रावराजा डा० श्यामबिहारी मिश्र और शुकदेवबिहारी मिश्र
५. वीरार्य शिवाजी—शंकरशरण गुप्त
६. शिवा साधना—हरिकृष्ण प्रेमी
७. अफजल वध—मोहनलाल महतो 'वियोगी'
८. छत्रपति शिवाजी—पं० धर्मदत्त शर्मा 'आजाद'
९. छत्रपति शिवाजी नाटक—पं० वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली'
१०. नाटक वीर शिवाजी मरहठा—न्यादरसिंह 'बेचैन'
११. रघुनाथराव—साह मदनमोहन
१२. दलजीतसिंह—वृंदावनलाल वर्मा

१०. शिवाजी का राज्याभिषेक।

११. शिवाजी की मृत्यु।

कुछ अपवादात्मक नाटकों को छोड़कर (सिंहगढ विजय, अफजल वध) शेष नाटकों में शिवाजी की संपूर्ण जीवनी अंकित करने का प्रयत्न हुआ है। स्वाभाविक कथावस्तु के विस्तार से दृश्यसंख्या बढ़ गई है। संख्या बढ़ने से दृश्य छोटे छोटे हो गए हैं, परिणामतः नाटक का प्रभाव बिखरा बिखरा सा रह गया है। विस्तार के अलावा संपूर्ण जीवनी अंकित करते समय भी नाटककार यदि प्रत्यक्ष कथावस्तु और सूचित कथावस्तु के विवेक का निर्वाह कर पाते तो नाटक अधिक सुगठित होता। प्रभाव में भी परिणामक्षमता आती। पर यह भी नहीं हो पाया है।

साहित्यिक नाटकों को छोड़कर शेष नाटकों में ऐतिहासिकता के प्रति सजगता का अभाव ही उपलब्ध होता है। (उदा० तानाजी के पुत्र का नाम, शिवाजी की मुक्ति के प्रयत्नों में संभाजी का कर्तृत्व, सिंहगढ विजय करने पर तानाजी का जीवित रहना आदि)

कथा में प्रणय की योजना भी नाटकों मे (उदा० छत्रपति शिवाजी-डा० सुवर्ण सिंह वर्मा 'आनंद', छत्रपति शिवाजी-पं० धर्मदत्त शर्मा 'आज़ाद', दलजीत सिंह-कृष्णलाल वर्मा, रघुनाथ राव-साह मदनमोहन) आरोपित है। इन सब में प्रेमी युगुल की प्रणयकहानी ऊपर से जोड़ी गई है। ऐसे नाटकों में शिवाजी की कहानी पिछड़ सी गई है।

संघर्ष भावना : इस विषय से संबद्ध सभी नाटक घटनाप्रधान हैं। इनमें वर्णित संघर्ष भी बाहरी हैं। स्वातंत्र्यप्राप्ति के प्रयत्नों मे मुसलमान बादशाहों की रुकावटों, हिंदुओं पर किए गए अत्याचारों और अन्यायों के विरुद्ध शिवाजी का संग्राम यही इन नाटकों मे प्राप्त होनेवाले संघर्ष का निचोड़ है।

उक्त तथ्य के लिये केवल एक नाटक अपवाद है, और वह है, मोहनलाल महतो 'वियोगी' का 'अफजल वध'। शिवाजी को छलकपट से मारने के घात को लेकर अफजल खाँ के मन में उत्पन्न कायरता के निमित्त मचा हुआ अंतर्द्वंद्व अत्युत्कृष्ट रीति से अंकित हुआ है। 'सरजा शिवाजी' (गोपालचंद्र देव) में दादाजी कोंडदेव की दुविधा के चित्रण में क्षीण आंतरिक संघर्ष की झलक मिलती है।

चरित्रचित्रण : उक्त नाटकों में आनेवाले चरित्रों में ऐतिहासिक तथा अनैतिहासिक चरित्रों का मेल है। शिवाजी, शहाजी, जिजाबाई, सई बाई, संभाजी, दादाजी कोंडदेव, तानाजी, येसा जी कंक, औरंगजेब, शाहजहाँ, शायस्ता खाँ, दिलेरखाँ, आदिलशाह, अफजलखाँ आदि ऐतिहासिक चरित्रों का समावेश

इन नाटकों में हुआ है। इन ऐतिहासिक चरित्रों के केवल लौकिक जीवन को ही प्रकाश में लाने का अवसर मिला है। निजी या अंतरंग जीवन को नहीं। सभी चरित्र स्थिर हैं। विकसनशील चरित्रों का नितात अभाव है। सभी नाटकों में विभिन्न ऐतिहासिक चरित्रों के उन्हीं चरित्रगुणों का उल्लेख मिलता है, जो इतिहास तथा परंपरा से हमें प्राप्त हैं। कुछ नाटकों में शिवाजी को ईश्वरीय अवतार के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न हुआ है। फिर भी शिवाजी के जो कार्यकलाप वर्णित हैं, उनमें किसी प्रकार की अलौकिकता नहीं प्राप्त होती।

कथोपकथन : अधिकाश नाटकों में कथोपकथन रस्मी है। प्रयुक्त भाषा वर्तमान खड़ी बोली है। कुछ नाटकों के मुसलमान पात्र उर्दू बोलते हैं। शेष चरित्र हिंदी उर्दू मिली जुली भाषा का प्रयोग करते हैं। थिएट्रिकल नाटकों की भाषा खिचड़ी, पर्याप्त मात्रा मे अशुद्ध है। लगभग सभी नाटको में गीत पाए जाते हैं। ये गीत पद्यमात्र हैं। इनमें काव्यात्मकता का अभाव है। धुँधली सी काव्यात्मकता के दर्शन साहित्यिक नाटको मे उपलब्ध होते हैं।

थिएट्रिकल नाटको में उर्दू शैली के शेर, तुकबंदी, चुटकुले आदि प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। थिएट्रिकल नाटको में संबद्ध ऐतिहासिक काल के विपरीत अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी किया गया है, जैसे नोटिस, लाइन, प्रेस, प्रोपेगैंडा, रिपोर्ट, नंबर, अटेंशन, मोशन आदि। (वीर शिवाजी मरहटा)।

वातावरण—स्थल तथा काल की नाममात्र की सूचना के अलावा वातावरणनिर्माण का कोई विशेष उल्लेखनीय प्रयत्न किसी नाटक मे नही हुआ है। इसका केवल एक अपवाद है वेणीमाधव त्रिपाठी 'श्रीमाली' का 'छत्रपति शिवाजी या समर्थ रामदास नाटक'। इस नाटक के प्रत्येक दृश्य का स्थल, काल, दृश्यपीठ (सेटिंग), चरित्रों की वेशभूषा, शस्त्रसज्जा तथा प्रत्येक दृश्य के लिये अनिवार्य रंगमंचीय (स्टेज) तथा वैयक्तिक (परसनल) सामग्री (प्रापर्टी) का ब्योरा विस्तृत टिप्पणियों द्वारा दिया गया है।

शैली—लगभग सभी नाटकों में आरंभ में संस्कृत नाटको की शैली का प्रयोग किया गया है। आरभ में मंगलाचरण है। फिर सूत्रधार और नटी का वार्तालाप उपलब्ध होता है जिसमें प्रचलित रंगमच एवं नाटक की आलोचना होती है और प्रस्तुत नाटक के अभिनय के औचित्य की मीमासा, नाट्यविषय तथा नाटककार का परिचय प्राप्त होता है। शिवाजी को अवतार के रूप मे उपस्थित करनेवाले नाटकों में (वीर शिवाजी मरहठा) एक और दृश्य मिलता है, जिसमें भारतमाता, धर्म, सत्य आदि विष्णु के पास पहुँचकर 'त्राहि त्राहि' की पुकार

मचाते हैं। इस प्रारंभिक दृश्य के पश्चात् मुख्य नाटक शेक्सपियर या पश्चिमी शैली के आधार पर लिखे गए मिलते हैं।

एक अंक में अनेक दृश्य बदलते जाते हैं। हत्या, मारकाट, युद्ध जैसे वर्ज्य दृश्यों का भी समावेश होता है। एक बात अवश्य है कि लगभग सभी नाटकों को सुखांत बनाने का प्रयत्न हुआ है। फिर भी संस्कृत शैली के अनुरूप अंत में 'भरतवाक्य' नहीं मिलता। कथानिवेदन प्रणाली की दृष्टि से इन नाटकों में कालक्रमानुसारी, उद्घाटन शैली अपनाई गई है।

उद्देश्य - सभी नाटक बोधप्रद (डिडैक्टिक) हैं। इसके अपवाद हैं— थिएट्रिकल शैली के अनुसार लिखे गए नाटक। इन नाटकों का उद्देश्य अवश्य सस्ता मनोरंजन है। कुतूहलवर्धन के लिये अद्भुत का पोषण 'ट्रिक' तथा 'ट्रासफर सीन' के जरिए हुआ है। शिवाजी की स्वातंत्र्यलिप्सा, युवक साथियों का संगठन, स्त्रियों के संबंध मे उदात्त नैतिकता, हिंदू मुस्लिम ऐक्यभाव का संवर्धन आदि वे पक्ष हैं जिनका अनुकरण नाटककार वर्तमान जनता द्वारा अभीष्ट मानते हैं।

रंगमंचीय अनुकूलता - साहित्यिक नाटकों मे 'अफजल वध', 'सिंहगढ़ विजय' आदि कुछ नाटकों को छोड़ शेष किसी नाटक को रंगमंचीय अनुकूलता प्राप्त नहीं है। थिएट्रिकल नाटकों की रंगमंचीय अनुकूलता भी अधूरे स्तर की है। संभावना (प्राबेबिलिटी) का विचार इन थिएट्रिकल नाटकों को छू तक नहीं गया है। साहित्यिक नाटकों में एक एक करके नायक से संबद्ध घटनाएँ अन्यान्य पात्रों के कथोपकथन द्वारा निरूपित होती हैं। इससे अधिक नाट्यात्मकता किसी नाटक में उपलब्ध नहीं है। इन्हे नाटकों के वेश में प्रस्तुत संभाषण कहना ही अधिक उपयुक्त एवं उचित होगा। उपलब्ध रंगमंच की दृष्टि से न दृश्यों का क्रम रखा गया है, न संभावना का ध्यान। अंकों की समाप्ति भी एकाएक हो जाती है, उदाहरणार्थ 'सरजा शिवाजी' अंक ५।४ तथा अंक ७।२।

हास्य – अधिकाश नाटकों में हास्य का अवलंबन नहीं किया गया है। इतिहास की गंभीरता का यथोचित निर्वाह करते हुए हास्य का उपयुक्त संयोजन केवल तीन नाटकों में प्राप्त होता है। श्री वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली' के नाटक 'छत्रपति शिवाजी या समर्थ रामदास' मे कुंडल तथा उनके शिष्यों की अवतारणा हास्य के लिये ही की गई है। इनके द्वारा ढोंगी संतों के ढकोसले का पर्दाफाश करने का सफल प्रयत्न नाटककार ने किया है। फिर भी, इतना तो निश्चित है कि इस हास्यकथा के केंद्रीय पात्र का मूल कथावस्तु से कोई संबंध नहीं है।

पं० धर्मदत्त शर्मा 'आजाद' के नाटक 'छत्रपति शिवाजी' में वर्तमान काल के लोलुप व्यापारियों की अधिकारलिप्सा और उसकी प्राप्ति के पश्चात् मचाए गए ऊधम हास्य का निर्माण करते हैं। हास्यकथा के वर्तमान कालीन होने से अतीत युग के प्रत्यय में व्यत्यय आ जाता है।

श्री प्यारसिंह 'बेचैन' देहली के नाटक 'वीर मरहठा शिवाजी' में एक ही दृश्य हास्य का है, जो नाटक के अंतिम हिस्से में आता है। नाटककार को संपूर्ण नाटक का अंत होते होते यह हास्य दृश्य रखने की दुर्बुद्धि क्यों हुई, पता नहीं चलता। इस दृश्य में चार हिजड़े हैं, इनमें से एक 'जोकर' कहलाता है। दृश्य हीन अभिरुचि का अवश्य है, बीभत्स भले ही न हो।

हर हर महादेव - पं० गोविंदशास्त्री दुगवेकर। नाटक महाराष्ट्र प्रदेश से नहीं बल्कि महाराष्ट्र व्यक्तियों से संबंध रखनेवाला है। इस नाटक की दूसरी विशेषता यह है कि नाटक हिंदी भाषा का होते हुए भी इसके लेखक हैं हिंदीतर भाषी पं० गोविंदशास्त्री दुगवेकर। इतना अवश्य है कि श्री० दुगवेकर महाराष्ट्रीय होते हुए भी बनारस के स्थायी निवासी थे।

नाटक उपदेशात्मक है। प्रधान उपदेश नाटक के नायक मल्हारराव होलकर के मुख से सूचित हुआ है। 'राजपूत तथा अन्य भाइयों से जो भूलें हुईं उन्हें सुधारकर एक सगठित हिंदू राष्ट्र का निर्माण करने का पवित्र यज्ञकंकण मराठों ने अपने हाथ बाँधा है और इसी कार्य के लिये हमारे उदार सरकार बाजीराव इस प्रांत में संचार कर रहे हैं।' --पृ० ५

मल्हारराव के आरंभिक वक्तव्यों में एक दुविधा सूचित होती है। मल्हारराव का वक्तव्य यों है- जो राजभक्त हो क्या उसे अपने धर्म पर तिलांजलि देनी ही होगी।' पृ०।

·······"वे यह नहीं समझते कि धर्म की रक्षा से ही भारत की रक्षा हो सकती है।" मतलब है कि मल्हारराव के मत में राष्ट्र और धर्म के द्वंद्व में धर्म को प्रधानता मिलनी चाहिए। दुर्भाग्य है कि नाटक की आगे की घटनाएँ इस दुविधा को प्रखर रूप में सामने नहीं लातीं। नाटक की कथा में न मल्हारराव के कर्तृत्व के दर्शन होते हैं, न बाजीराव के कर्तृत्व के। दोनों का नाटक में अस्तित्व परोक्ष एवं अप्रधान है।

नाटक की कथा जयपुर नरेश की बहन लीलावती के बहादुरशाह से आयोजित विवाह से संबंध रखती है। लेकिन यह ब्याह राजनीतिक ब्याह नहीं है। क्योंकि लीलावती स्वयं बहादुरशाह से प्रेम करती है। बूँदी के राजा बुधसिंह लीलावती से ब्याह करते हैं। फिर उनपर तथा उनके संबंधियों पर अन्य

स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा जो अत्याचार होते हैं उसका वर्णन नाटक में मिलता है। अंत में लीलावती मल्हारराव होलकर के आश्रय मे पहुँचती है। बुधसिंह का पुत्र भी मल्हारराव की शरण में आता है। मल्हारराव ईश्वरसिंह को जयपुर के राज्य-सिंहासन पर बैठाते हैं।

नाटक की रचना करते समय नाटककार ने अद्भुत का निर्माण ही अपना एकमात्र ध्येय रखा है। चरित्रों मे आनेवाले परिवर्तन एवं घटनाओं की अवतारणा केवल अद्भुत के निर्वाह के लिये होती है। चरित्रपरिवर्तन एवं घटनाओं के संबंधनिर्वाह मे किसी प्रकार की युक्ति या संगति काम नहीं करती।

कुछ प्रसंग एवं कुछ चरित्र अनुकरणात्मक हैं। मल्हारराव होलकर के सिपाहियों का लूट में एक यवन स्त्री को लाना और बाजीराव का उसे माता संबोधन कर संमान के साथ लौटाना, शिवाजी के जीवन के प्रसंग की आवृत्ति है। बाजीराव के संबंध मे इस प्रकार की किसी कहानी का इतिहास मे अनुमोदन नहीं प्राप्त होता है।

हास्य के लिये एक लोभी कायर राजा गयाराम के चरित्र का आयोजन नाटककार ने किया है। यह चरित्र श्री० कृ० प्र० खाडिलकर के 'मानापमान' नाटक के 'लक्ष्मीधर' की हूबहू प्रतिकृति है।

नाटक का आरंभ संस्कृत शैली से हुआ है। आरंभ में नांदी, मंगलाचरण, फिर सूत्रधार तथा नटी का दृश्य, जो नाटक के विषय तथा कथा की ओर संकेत करता है।

नाटक अधिकांश मात्रा मे कल्पनाधिष्ठित है। कुछ ऐतिहासिक नेताओं के नाम अवश्य नाटक में प्राप्त हैं। शेष घटनाएँ तथा कथानक संपूर्णतया कल्पना-प्रसूत अतः अनैतिहासिक हैं।

नाना फड़नवीस

मराठों के इतिहास मे साढे तीन सयाने प्रसिद्ध हैं। जिनमें आधा सयाना बनने का गौरव पेशवाओं के परामर्शदाता नाना फड़नवीस को है। इस नाना फड़नवीस के अलौकिक व्यक्तित्व की ओर हिंदी के दो अग्रगण्य नाटककार आकृष्ट हुए हैं। एक हैं श्री परिपूर्णानंद वर्मा और दूसरे हैं डा० रामकुमारवर्मा

नाना फड़नवीस की गणना मराठी इतिहास के साढ़े तीन सयानों में क्यों न हुई हो, श्री परिपूर्णानंद वर्मा भारत के कूटनीतिज्ञ पुरुषों की श्रेणी में श्रीकृष्ण, आर्य चाणक्य के बाद तीसरा स्थान नाना फड़नवीस को देते हैं। आ० नरेंद्रदेव ने इस नाटक की जो भूमिका लिखी है, उसमें इस बात की ओर संकेत

किया है कि नाना फड़नवीस के इतिहास का हिंदी में अभाव है। "परिपूर्णानंद जी ने इस कमी को पूरा कर हिंदी साहित्य का उपकार किया है।"

श्री परिपूर्णानंद सर्वप्रथम इतिहास के अनुसंधाता हैं, बाद में ललित साहित्यकार। इस दृष्टि से ऐतिहासिक नाटक के संबंध में आपका वक्तव्य भी द्रष्टव्य है।

"हिंदी तथा बंगला में ऐतिहासिक नाटक भरे पड़े हैं। पर इनकी प्रणाली मुझे पसंद न आई। यद्यपि स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद ऐसे कलाकार ने इतिहास का पर्याप्त ध्यान रखते हुए नाटक लिखे हैं, पर अधिकांश में इतिहास की एक घटना पर पूरा ही नाटक बन जाता है और उसमें रुपये में एक पैसा बराबर इतिहास रहता है। शेष मनगढ़ंत होती है। मैंने अपने इस प्रयास में क्रमसहित तीस पैंतीस वर्ष की घटनाओं का सार दिया है और समूचे नाटक द्वारा एक पूरे युग का इतिहास लिख दिया है।" (पृ० २, निवेदन)। पारमार्थिक दृष्टि से (आन ऐन ऐब्सोल्यूट लेवल) इस दृष्टिकोण से मतभेद रखते हुए नाटककार के लिये किस मात्रा में इतिहास-भाव सजग हो, इसके संकेत के उपलक्ष्य में मैं लेखक महोदय का अभिनंदन करता हूँ। और इसीलिये मैं श्री परिपूर्णानंद वर्मा की कृति को ऐतिहासिक नाटक न मानते हुए नाटकरूप इतिहास मानना अधिक पसंद करता हूँ। और वही उसका स्वरूप भी है क्योंकि लेखक ने यह नाटककृति दो विभागों में बाँटी है। पहला भाग है जीवनी खंड, और दूसरा भाग है नाटक खंड।

नाटककार ने अपने निवेदन में यह दावा किया है—"मैंने नाटक को खेलने तथा पढ़ने दोनों योग्य बनाया है।" इस दावे की सफल चरितार्थता में संदेह है। परदे तथा स्टेज की सेटिंग्स को सहजसाध्य बनाने से ही कोई नाटक अभिनेय नहीं बनता। बल्कि मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि जिन नाटकों के अभिनय होते हैं, उन्हें भी हर बार अभिनेय नहीं कहा जा सकता। अभिनेयात्मकता का प्राण है—कथा की दृश्यात्मक रोचकता। और खेद है कि श्री परिपूर्णानंद इस अंग में असफल रहे हैं।

क्रमागत साररूप इतिहास देने के प्रयत्न में नाटक घटनाप्रधान हो गया है। नाटक ने तथ्यात्मक (डाक्युमेंटरी) नाटक जैसा रूप ग्रहण किया है। अतः नाना फड़नवीस के व्यक्तित्व का उद्घाटन पर्याप्त मात्रा में नहीं हो पाया है। इस संबंध में यहाँ इस बात का उल्लेख करना चाहता हूँ कि नाना फड़नवीस के जिस व्यक्तित्व का उद्घाटन नाटककार को अभिप्रेत है वह नाना फड़नवीस का सार्वजनिक, राजनैतिक व्यक्तित्व है। उस व्यक्तित्व का क्षेत्र भी नाटककार ने पर्याप्त विस्तृत रखा है। नाना फड़नवीस के इस राजनैतिक व्यक्तित्व की महत्ता की ओर संकेत करते हुए आ० नरेंद्र देव ने भूमिका में लिखा है—

"इस समय मराठा साम्राज्य में नाना फडनवीस ऐसा दूरदर्शी और निपुण राजनीतिज्ञ मौजूद था। मराठा राज्य में ही उससे कई लोग स्पर्धा करते थे और उसके विनाश की सदा चेष्टा किया करते थे। पर, वह अपनी कार्यकुशलता से सदा अपनी रक्षा में समर्थ रहा और शत्रुओं के षडयंत्र को सदा विफल करता रहा। गृहकलह को शांत करने, कम से कम उसको काबू में रखने का वह सदा प्रयत्न करता था। नाना कंपनी का शत्रु था। उसका समकालीन वीर हैदरअली भी कंपनी का शत्रु था। इन दोनों ने अंग्रेजों के विरुद्ध एक गुट बनाना चाहा और निजाम को भी उसमें शामिल किया। किंतु, गायकवाड और भोसले अलग रहे। सिंधिया की अपनी अलग नीति थी। वह अपना प्रभाव बढ़ाने तथा प्रधानता स्थापित करने के लिये मध्यस्थ होकर अंग्रेजों से संधि कराना चाहते थे। इन सरदारों के आगे नाना फडनवीस की भी कुछ न चली।" (पृ० ३, निवेदन)।

नाटक मराठी क्षेत्र से संबद्ध है। अतः नाटककार ने संबोधन अभिवादन आदि के लिये मराठी शब्दों का प्रयोग किया है। मैं इस प्रवृत्ति का हार्दिक स्वागत करता हूँ। फिर भी अपरिचय के कारण कुछ गलत संबोधनों का प्रयोग नाटक में हुआ है। जैसे—चुलता, भावजय, सासर, जनई, वहिनी आदि।

श्री परिपूर्णानंद वर्मा की तरह डा० रामकुमार वर्मा के नाना फडनवीस के व्यक्तित्व को लेकर लिखे गए नाटक का शीर्षक भी व्यक्तिवाचक तथा चरित्रप्रधान है। लेकिन शीर्षक के साथ नाटक की व्याख्या करनेवाली दो पंक्तियाँ डा० रामकुमार वर्मा ने जोड़ी हैं। वे इस प्रकार हैं—

"तीन अंकों में भारतीय संस्कृति एवं राजनीति का एक चिरस्मरणीय चित्र।"

इस स्पष्टीकरण से नाटक के स्वरूप का बोध होता है। नाटक का शीर्षक भले ही व्यक्तिवाचक हो, नाटक की कथा व्यक्तित्व उद्घाटन करनेवाली प्रधानतया नहीं है। अतः इसे हम जीवनी प्रधान ऐतिहासिक नाटक (हिस्टोरिकल बायग्राफीकल प्ले) नहीं कह सकते।

डा० वर्मा नाना फडनवीस को भारतीय इतिहास का एक स्मरणीय नाम मानते हैं। उनकी मान्यता है कि "ये ही महाराष्ट्र के अप्रतिम राजनीतिज्ञ थे, जिन्होंने हिंदु पातशाही की दुंदुभि बजाकर अंग्रेज, फ्रांसीसी, मुगल, हैदर, टीपू-सुलतान और निजाम की समस्त कूटनीति और षड़यंत्रों को नष्ट कर राष्ट्रीयता की नींव मजबूत की।"

नाटक के तीन अंक हैं। पहले अंक में नाना फडनवीस का राजनीतिक क्षेत्र में उदय तथा अगले दो अंकों में पेशवापद को लेकर पेशवा - परिवार में

मचे हुए पारिवारिक कलह का निपटारा नाना फडनवीस ने किस प्रकार किया, इसका वर्णन है। नाट्यशिल्प की दृष्टि से पहला अंक नाना फडनवीस के कर्तृत्व से उतना संबद्ध नहीं है। अतः उद्‌घाटन की दृष्टि से प्रदीर्घ सा लगता है। उसकी तुलना में शेष दो अंक अति सुगठित हैं। दूसरे अंक में ज्येष्ठ माधव राव के समय राघोबा (रघुनाथराव पेशवा) तथा उनकी पत्नी आनंदीबाई के स्वार्थ-लिप्सावश किए गए विद्रोही कृत्यों को नाना फडनवीस ने किस प्रकार निष्प्रभ कर दिया, इसका संकेत मिलता है। इस अंक में भी जिस व्यक्ति के कर्तृत्वका अधिकांश में वर्णन हुआ है, वह व्यक्ति है, ज्येष्ठ माधवराव पेशवा। हाँ, यह सत्य है कि परोक्ष में इस सारे कर्तृत्व का श्रेय नाना फडनवीस के सही परामर्श-निर्देशन को है।

प्रथम दो अंकों की कथावस्तु अधिकांश में निवेदन स्वरूप की है। वह निवेदन अत्यंत सुचारु रूप से हुआ है इसमें कोई संदेह नहीं। फिर भी यह स्वीकार ही करना पड़ेगा कि निवेदन स्वरूप ही होने से इन दोनों अंकों की गति मंथर स्वरूप हुई है।

पहले दो अंकों की तुलना में तीसरा अंक अति सबल है। इस नाटक में राघोबा की राजनैतिक महत्वाकाक्षा, नारायणराव की पत्नी गंगाबाई की हत्या करने की सीमा तक जा पहुँचती है। इसका अनुमान लगाकर नाना फडनवीस ने गंगाबाई को पुरंदर के किले में भेज रखा है। नाना का निश्चय हो चुका है किसी अवस्था में रघुनाथ राव पेशवा नहीं बन सकता। वह नारायणराव का उत्तराधिकारी ही बन सकता है। उन्हें विश्वास है कि गंगाबाई की कोख से जो पुत्र पैदा होगा उसी को पेशवापद पर अधिष्ठित किया जायगा। संयोग से यदि गंगाबाई के पुत्री हुई, तो नाना ने पुरंदर में छः अन्य ब्राह्मण गर्भवती स्त्रियों को ला रखा है। जिस किसी के पुत्र होगा उसी को गंगाबाई का पुत्र घोषित करना नाना की कूट-नीति की चरम सीमा है। गंगाबाई की हत्या करने के लिये राघोबा ने जो चाल चली है वह भी राघोबा के दुर्भाग्य से असफल रहती है। और राघोबा को रँगे हाथों पकड़ा जाता है।

नाटक के अंतिम अंश में नाना स्पष्ट घोषणा करता है कि गंगाबाई का पुत्र ही पेशवा बनेगा और इसी घोषणा पर नाटक समाप्त होता है।

कथावस्तु की दृष्टि से अच्छा होता यदि लेखक नाना फडनवीस के अप्रतिम राजनैतिक कौशल का उद्‌घाटन करना ही अपना लक्ष्य बनाता। इस नाटक में नाना फडनवीस का जो कर्तृत्व आलोकित हुआ है वह अत्यंत सीमित घेरे का है और नाना की चतुराई के साथ न्याय नहीं करता। नाना केवल पेशवा वंश के

संरक्षक नहीं थे, वे तो मराठा साम्राज्य के लौह पुरुष थे। पारिवारिक कलह की अपेक्षा उन्होंने मराठी साम्राज्य की बाहर के शत्रुओं से जो रक्षा की, उसका उल्लेख नाटक में होना नितांत आवश्यक था। दुर्भाग्य से नाटककार का ध्यान इस ओर नहीं गया है।

सीमित रूप में अपनी मर्यादा में नाना फडनवीस के अलौकिकत्व का जो दिग्दर्शन इस नाटक में हुआ है वह अत्यंत रुचिकर एवं हृद्य है।

नाटक के घटनासंचयन में उन्हीं घटनाओं को स्थान दिया गया है जिनका "आधार सत्य पर ही है। कल्पना उस सत्य को निखारने में सहायक मात्र होती है।"

चरित्रचित्रण में भी नाटककार सफल है। इस संबंध में नाटककार का निवेदन यह है —

"ऐतिहासिक व्यक्तित्वों में जो सत्य है, उन्हें उद्घाटित करने से ही पात्र सजीव होता है। पात्रों के संस्कार और वातावरण के प्रभाव से जिस मनोविज्ञान का निर्माण होता है उसकी क्रिया और प्रतिक्रिया में पात्रगत सत्य उभरता है। जब उस सत्य में वस्तुगत कल्पना का योग होता है, तो पात्र में जीवन की वास्तविकता प्रकट होती है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत नाटक में चरित्रों का कार्यकलाप निर्मित हुआ है।"

चरित्रचित्रण की प्राकृतिकता की दृष्टि से दूसरे अंक में नाना के साथ जो नारायणराव और उसकी पत्नी गंगाबाई की बातचीत है, वह अस्वाभाविक लगती है। वह रुचिकर अवश्य है और उसके मंतव्य की दृष्टि से उपयोगी भी है फिर भी स्त्री पुरुष स्वतंत्रता का जो वातावरण उस दृश्य में परिलक्षित होता है, उतने मुक्त वातारण में पेशवाओं के समय में स्त्री पुरुष नहीं मिल सकते थे।

उसी तरह तीसरे अंक में राघोबा के सहायक बनकर जो लोग विषैले वस्त्रों की भेंट काष्ठपेटिका में गंगाबाई के लिये लाते हैं वे (महादेव और उसका मामा) अत्यंत बुद्धू जैसे लगते हैं। नाना फडनवीस के डाँटने पर मामा अपना नाम तक सरल रीति से नहीं बतला सकता, इतना वह अनाड़ी है। राघोबा की दी हुई कटार बाहरी कक्ष में ही छोड़ जाने की असावधानी कर महादेव अपनी बुद्धि की निर्धनता का परिचय देता है। ऐसे निर्बुद्धि व्यक्तियों को गंगाबाई की हत्या जैसे घोर अत्याचार के लिये चुनना राघोबा एवं आनंदीबाई की बुद्धि-शून्यता को ही प्रकाश में लाता है। ऐसे बुद्धुओं की पोल खोलने में नाना की चतुराई का भी विशेष गौरव नहीं है।

नाटक के कथोपकथन पूरे नाटक भर में अत्यंत हृद्य हैं। वे पात्रानुकूल, संक्षिप्त और हृदयस्पर्शी हैं।

नाटक मराठी भाषी प्रदेश से संबद्ध है। लेकिन लिखा गया है हिंदी में। इसलिये नाटककार ने कुछ मराठी भाषा के शब्दों के विशिष्ट संदर्भों को प्रयुक्त करने की योजना की है। भाषा के संबंध में अपनी नीति स्पष्ट करते हुए नाटककार लिखते हैं—

"किसी काल विशेष में जिस भाषा का प्रयोग जिस रीति से होता था उसकी समीपतम स्थिति भाषा को प्राप्त होनी चाहिए......यह नाटक हिंदी का है, अतः इस नाटक की हिंदी ऐसी होनी चाहिए जो हिंदी पाठकों को तत्कालीन मराठी का वातावरण दे सके।......कीर्तन द्वारा (गीत गायन द्वारा) मराठी भाषा-भावना का ही वातावरण उपस्थित किया गया है।"

अपने उद्देश्य में नाटककार अवश्य सफल हुए हैं। उदाहरण के लिये पेशवा के लिये संबोधन 'श्रीमंत' का प्रयोग, आशीर्वाद के लिये 'स्वस्ति' शब्द का प्रयोग, संबोधन संमान के लिये 'राजमान्य राजश्री' का प्रयोग, 'लाख' के अर्थ में 'पन' शब्द का प्रयोग उल्लेखनीय हैं। फिर भी कुछ त्रुटियाँ, यद्यपि वे गौण हैं, अवश्य रह गई हैं। उदाहरण के लिये नाना फडनवीस के लिये भी श्रीमंत' संबोधन का प्रयोग, रामशास्त्री के लिये 'न्यायमूर्ति' का प्रयोग 'पर्वती' के लिये 'पार्वती' का प्रयोग, रघुनाथराव और आनंदीबाई के लिये काका रघुनाथराव और काकी आनंदीबाई, गंगाबाई की सौभाग्यावस्था में 'श्रीमती' जैसा संबोधन, गंगाबाई का 'पार्वतीबाई' के लिये 'ताई' संबोधन, माधवराव के द्वारा राघोबा के प्रति 'वरिष्ठ' जैसे विशेषण का प्रयोग मराठी भाषा के भावों के विपरीत हैं। सबसे बड़ी गलती सातारा के दो आगंतुकों को लेकर 'वारभाई' के प्रयोग में हुई है। नाटककार ने किस अभिप्राय से 'वार' या 'बार' शब्द का प्रयोग किया है समझ में नहीं आता।

रंगमंच की दृष्टि से नाटक में एकांक एक दृश्य की योजना हुई है। चरित्रों की संख्या भी मर्यादित और कथा का विस्तार भी सीमित है। नाटक सहजतया सफलता के साथ अभिनीत हो सकता है, इसमे किसी प्रकार का संदेह नहीं।

इन दोनों नाटकों में कलात्मकता तथा ऐतिहासिक चरित्रों के व्यक्तित्व की मानवीयता एवं अभिनेयता की दृष्टि से डा० रामकुमार वर्मा की कृति श्रेष्ठतर है इसमें कोई संदेह नहीं।

फिर भी मैं इन दोनों नाटककारों का अभिनंदन एक अलग दृष्टि से ही करना चाहता हूँ। भारतीय इतिहास का चिरस्मरणीय व्यक्तित्व होते हुए भी नाना

फड़नवीस विशेष रूप से महाराष्ट्र के इतिहास के, खास कर पेशवाई शासन के अविस्मरणीय नेता हैं। फिर भी एक भी मराठी नाटककार ने नाना फड़नवीस को अपनी किसी नाट्यकृति का नायक नहीं बनाया है। पेशवाई से संबद्ध अनेक मराठी ऐतिहासिक नाटकों में नाना फड़नवीस अवतीर्ण हुए हैं लेकिन परोक्ष रीति से और कहीं कहीं गौण रीति से। हिंदी के नाटककारों ने इस व्यक्तित्व को अपनी रचनाओं का नायक बनाकर जो प्रधानता प्रदान की है, वह सचमुच ही प्रशंसनीय है।

शारदीया

ऐतिहासिक नाटक लिखने की जो अनेक प्रेरणाएँ हैं उनमें से एक प्रेरणा है अतीत काल के किसी रहस्य का उद्घाटन करना। 'शारदीया' श्री जगदीशचंद्र माथुर ने इसी प्रकार के एक अतीतकालीन रहस्य का उद्घाटन करने के लिये लिखा है। अपने भ्रमण के सिलसिले में जगदीशचंद्र माथुर नागपुर पहुँचे। नागपुर का अजायबघर देखा और एक अनोखी वस्तु पर उनकी दृष्टि पड़ गई और उसमें उलझ भी गई। वह वस्तु थी एक साड़ी। पाँच गज से अधिक लेकिन उसका वजन था पाँच तोला। साड़ी महीन से महीन थी और धवल से धवल। साहित्यकार माथुर का मन कुतूहल से अभिभूत हुआ। उन्होंने उस बंदी की खोज लगाने की कोशिश की जिसने ग्वालियर के अंधेरे तहखानों में आजीवन कारावास की सजा भुगतते हुए यह अनोखी साड़ी बुनकर तैयार की थी।

पृष्ठभूमि के रूप में जो इतिहासानुमोदित कथा मिलती है वह मराठों के इतिहास के एक प्रसिद्ध युद्ध—खर्डा की लड़ाई (सन् १७९५) से संबंध रखती है। उस समय मराठा शासन की बागडोर अल्पवयस्क पेशवा द्वितीय (सवाई) माधवराव के हाथ में थी। लेकिन सूत्रचालक थे नाना फड़नवीस और महादजी सिंधिया। सन् १७९४ में महादजी सिंधिया की मृत्यु हुई। और दत्तक पुत्र दौलतराव सिंधिया और नाना फड़नवीस में पेशवा पर अधिकार जमाने के लिये होड़ कायम रही। नाना फड़नवीस की सवार-टुकड़ी में एक सखाराम घाटगे नाम का पदाधिकारी था। वही इस नाटक का दुर्जन है। वह दुर्दांत महत्वाकांक्षा से ग्रस्त था और उसने बड़ी युक्ति और कुटिलता के साथ अपनी शक्ति तथा प्रभाव का विस्तार किया।

सखाराम घाटगे की पुत्री बायजाबाई अनिंद्य सुंदरी थी। सखाराम घाटगे ने पुत्री के सौंदर्य को अपनी महत्वाकांक्षा का साधन बनाकर उसका विवाह दौलतराव सिंधिया से करा दिया। बायजाबाई का प्रेमी था नरसिंहराव जो पेशवाओं की सेना में भेदिये का काम करता था। अपने भेदिये के काम में उसने तरह तरह के हुनर सीख लिये थे और बुनकर कला का तो वह उस्ताद ही बन चुका

था। बायजाबाई का ब्याह दौलतराव से अकंटक संपन्न हो, इस दृष्टि से सखाराम घाटगे ने नरसिंहराव पर व्यर्थ का आरोप लगाकर दौलतराव सिंधिया के हाथों उसे मृत्युदंड दिलाया, जो बाद में ग्वालियर के सरदार बिनसीवाले की सिफारिश से आजन्म कारावास में परिवर्तित करा दिया गया। बायजाबाई ने इस विश्वास से दौलतराव सिंधिया से ब्याह किया कि नरसिंहराव खर्डा की लड़ाई में मौत के घाट उतारा जा चुका है।

अँधेरी कोठरी में नरसिंहराव ने अपनी प्रेमसाधना कायम रखी। उसका प्रेम अब उस भक्ति में परिणत हो चुका था जो अपने प्रिय पर अपना सब कुछ चढ़ाने के लिये अधीर रहती है। नवधा भक्ति में अर्चना नाम की एक भक्ति है जो भक्त को अपना सर्वोत्तम अपने आराध्य पर निछावर करने के लिये विवश करती है। संयोग से एक दिन बायजाबाई नरसिंहराव के तहखाने में पहुँची। बंदी के रूप में उसने नरसिंहराव के दर्शन किए और नरसिंहराव ने उसे अपनी बुनी हुई साड़ी भेंट की।

नाटक किसी ऐतिहासिक तथ्य के उद्घाटन के लिये नहीं लिखा गया है, बल्कि एक अनोखी कारीगरी के स्रोत का उद्घाटन करने के लिये, एक अतीत-कालीन प्रेमकथा पर प्रकाश डालने के लिये लिखा गया है। इस प्रेमकहानी द्वारा प्रेमविषयक उसी सिद्धात को दुहराया गया है. जो 'कोणार्क' में प्राप्त होता है। वह सिद्धात यों है - 'प्रेम कभी विफल नहीं होता। प्रेम उपभोग नहीं है। वह त्याग है। प्रेयसी को लेकर जो प्रेम लौकिक दृष्टि से विफल रहा, वह अभिव्यक्ति की और दिशाएँ ग्रहण करता है। विशु के लौकिक तथा विफल प्रेम ने हमें कोणार्क का मंदिर दिया, नरसिंहराव के विफल प्रेम ने हमें यह अनोखी साड़ी दी।

कथावस्तु अत्यंत सीमित तथा संकेंद्रित (कंसंट्रेटेड) है। इतिहास के साथ साथ कल्पना का भी सहारा लिया गया है। लेकिन वह कल्पना इतिहासविसंगत नहीं है।

चरित्रचित्रण एवं कथोपकथन अत्यंत उच्चकोटि के हैं। प्रत्येक चरित्र अपनी अमिट छाप दर्शकों पर छोड़ जाता है। और कथोपकथन सहज में काव्यात्मक बन जाता है।

दृश्ययोजना में अवश्य कठिनाइयाँ हैं। पहले अंक में दृश्य कुल तीन हैं। लेकिन स्थल दो ही हैं। एक-पूना में सर्जेराव घाटगे का मकान और खर्डा के युद्धस्थल में मराठा शिविर का खेमा। द्वितीय अंक में कुल दो दृश्य हैं पूना का सर्जेराव का मकान और दूसरा ग्वालियर के किले का तहखाना। तृतीय अंक

में भी ये ही दो स्थल दुहराए गए हैं। इससे दो कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। पहले के डीप सीन पर अगले दृश्य का डीप सीन स्थिर रंगमंच पर असंभव है। दो दृश्यों में एक ही स्थल होने से जो कालांतर की सूचना अभिप्रेत है वह भी नहीं मिलती।

नाटक में तीनों अन्वितियों का निर्वाह सुचारु रूप से हुआ है नाटक की भाषा, विषय मराठी क्षेत्र का होते हुए भी हिंदी है। वह स्वाभाविक है, लेकिन एक बात अवश्य खटकती है—वह है बायजाबाई का सूरदास का पद गाना।

सार्वजनिक जीवन की राजनैतिक घटनाएँ व्यक्तियों के निजी जीवन को किस प्रकार प्रभावित करती हैं तथा ऐतिहासिक चरित्रों की मानवीयता को उभार लाने की दृष्टि से 'शारदीया' को मैं आदर्श ऐतिहासिक नाटकों में सर्वोच्च स्थान देना उचित होगा।

झाँसी की रानी

सर्वप्रथम यह स्पष्ट करना होगा कि इस विषय को लेकर लिखे गए नाटकों को महाराष्ट्र से संबद्ध हिंदी के ऐतिहासिक नाटक क्यों माना जाय क्योंकि झाँसी महाराष्ट्र के क्षेत्र का राज्य नहीं है। फिर भी झाँसी का राज्य पेशवाओं के आश्रय में था और इसी तथ्य का आश्रय लेकर अंग्रेजों ने पेशवाओं से की गई एक संधि की शर्त के बल पर झाँसी का दत्तकपुत्र अस्वीकार किया।

इन नाटकों को महाराष्ट्र से संबद्ध मानने का दूसरा एक कारण है कि इस नाटक की नायिका तथा सन् १८५७ के स्वातंत्र्य समर के सूत्रधार नानासाहब पेशवा का महाराष्ट्रीय होकर। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का मायका तांबे परिवार पेशवाओं के साथ ही बिठूर पहुँचा।

एक और कारण यह भी है कि स्वातंत्र्य समर के अतुलनीय पराक्रमी सेनापति तात्या टोपे भी महाराष्ट्रीय ही रहे। ये ही कारण हैं कि जिनके बल पर इस विषय से संबद्ध नाटकों को महाराष्ट्र के इतिहास से संबद्ध ऐतिहासिक नाटक माना गया है।

इस विषय पर लिखे गए निम्नलिखित नाटक उपलब्ध होते हैं :

१. झाँसी पतन या झाँसी की रानी
२. महारानी लक्ष्मीबाई – कंचनलता सब्बरवाल
३. झाँसी की रानी—वृंदावनलाल वर्मा
४. झाँसी की रानी—राजेश्वर गुरु
५. झाँसी की रानी—सत्यनारायण सत्य
६. झाँसी की रानी अर्थात् महारानी लक्ष्मीबाई —न्यादरसिंह 'बेचैन'

ऐतिहासिक नाटकों के वर्गीकरण की दृष्टि से इन नाटकों के निम्नानुसार वर्ग किए जा सकते हैं—

क. इतिहासकाल की दृष्टि से ये सब के सब नाटक आधुनिक इतिहास से संबद्ध हैं।

ख. घटना अथवा चरित्र की प्रधानता को लेकर किए गए वर्गों की दृष्टि से ये सभी नाटक घटनाप्रधान अथवा इपीसोडिकल कहे जा सकते है।

ग. चूँकि इन सभी नाटकों में अधिकांशतया झाँसी की रानी के बालपन से लेकर उसकी मृत्यु तक की घटनाएँ अंकित हुई हैं, इस दृष्टि से इन नाटकों को जीवनीप्रधान ऐतिहासिक नाटक (बायोग्राफिकल) कहा जा सकता है।

च. लगभग सभी नाटकों की रचना सोद्देश्य होने के नाते ये नाटक उद्देश्यप्रधान भी कहे जा सकते है। इसी उद्देश्य के अनुषंग में अतीतकालीन घटनाओं में वर्तमान की झाँकी पाने और देने का भी प्रयोग परिलक्षित होता है।

एकाध अपवाद को छोड़कर बाकी सब नाटक आधुनिक पश्चिमी शैली में लिखे गए हैं। जिन्होंने संस्कृत नाट्यशैली का अवलंब किया है उनमें भी संस्कृत शैली केवल आरंभ में ही प्राप्त होती है, जो 'नादी' (बालाओं की ईश्वर प्रार्थना) और प्रस्तावना (नट-नटी या सूत्रधार नटी द्वारा नाट्य विषय, नाटककार तथा उद्देश्य की सूचना) तक सीमित है।

सभी नाटकों में आरंभ कुमारी मनु (अथवा छबीली) के बचपन से हुआ है। आरंभ के दृश्यों में मनु का बालपन नानासाहब और रावसाहब पेशवा की संगति में बीता। शस्त्रविद्या तथा अश्वारोहण की शिक्षा भी इन्हीं की संगति में पाई आदि बातों का उल्लेख मिलता है। दूसरी घटना है झाँसी के महाराज गंगाधरराव से मनु का विवाह। दो एक नाटकों में भविष्यत् के संकेत की दृष्टि से विवाह के अवसर पर दुलहा-दुलहिन के शेला-शालुओं की गाँठ बाँधते समय पुरोहित के हाथ काँपने तथा मनु के पुरोहित से गाँठ कसकर बाँधने की प्रार्थना के उल्लेख मिलते हैं।

तीसरी घटना है गंगाधरराव की मृत्यु तथा मृत्यु से पहले किसी नातेदार के पुत्र आनंदराव को गोद लेना और उसका नाम दामोदरराव रखना। गंगाधर राव की पोलिटिकल एजंट मि० एलिस से गोद स्वीकार करवाने की प्रार्थना तथा दत्तकपुत्र के नाबालिग रहने तक राज्य के कारोबार को झाँसी की रानी महारानी लक्ष्मीबाई को सौंपने की घोषणा।

चौथी घटना है तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डलहौसी का गोद अस्वीकार करना और झाँसी के राज्य को ब्रिटिश इलाके में मिला लेना। झाँसी की

रानी प्रतिकार के लिए तैयार होती है। नानासाहब पेशवा एवं सेनापति तात्या टोपे इस प्रतिकार को देशव्यापी प्रतिकार का स्वरूप देने की सोचते हैं। विद्रोह की पूरी योजना बनती है।

यह प्रयत्न असफल क्यों हुआ? इसके निम्नलिखित स्पष्टीकरण भिन्न भिन्न नाटकों में उपलब्ध होते हैं—

१ जो तिथि निश्चित हुई थी, उससे पहले ही ब्रिटिश सेना के हिंदुस्तानी सिपाहियों ने विद्रोह आरंभ किया।

२. गंगाधरराव के दासीपुत्र नवाब अली का अंग्रेजों का साथ देना तथा अपने सेवक पीर अली द्वारा झाँसी की अंदरूनी खबरें स्वार्थवश अंग्रेजों को पहुँचाना।

४. दीवान दूल्हाजू का देश एवं स्वामि द्रोह करके ओरछा का फाटक खोल कर अंग्रेज सेना का झाँसी के किले में प्रवेश करा देना।

५. ग्वालियर के राजा सिंधिया का झाँसी की रानी का साथ न देना।

६. रावसाहब पेशवा की विलासिता, आदि।

ऊपर के स्पष्टीकरणों से विदित होगा कि, स्वातंत्र्य समर असफल रहा, अंग्रेजों की कूटनीति के कारण। इस कूटनीति के शिकार भारत के ही कुछ आस्तीन के साँप बने। जैसे 'घर के भेदी' इन नाटकों में मिलते हैं—वैसे कुछ विभीषण भी इन नाटकों में मिलते हैं। जैसे—कालेखाँ डाकू, कुँवर सागरसिंह मुंदर-मुंदर (लक्ष्मीबाई की दासियाँ), मोतीबाई तथा जूही (महाराजा गंगाधर राव की गणिकाएँ)।

ऐतिहासिकता की दृष्टि से लगभग सभी नाटकों में इतिहसभाव की रक्षा की गई है। कुछ छोटे मोटे ब्योरों में अवश्य कल्पना दौड़ाई गई है।

दुर्भाग्य से नाट्यकला की दृष्टि से ये सभी नाटक अति साधारण हैं। इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं—

१. इतिहास की विस्तृत कथा से कौन घटनाएँ प्रत्यक्ष मे दिखाई जायँ और किन घटनाओं की सूचनामात्र दी जाय, इसका विवेक नाटककारों ने नहीं रखा है। परिणामतः कथावस्तु विशृंखल हो गई है। दृश्यों की भरमार हुई है और प्रभाव की दृष्टि से नाटक निष्प्रभ बने हैं। नाट्यात्मकता नहीं आ पाई है और किसी घटना को लेकर कुछ व्यक्तियों के वार्तालाप, इतना ही रूप नाटकों में ग्रहण किया गया है।

ऐतिहासिक नाटक की सफलता के लिये जो बात अनिवार्य होती है उसका अभाव भी इन नाटकों में पाया जाता है। अभिप्राय है ऐतिहासिक चरित्रों

के मानवीय पहलू के उद्घाटन से। एक ही उदाहरण से इस मत का स्पष्टीकरण हो जायगा।

झाँसी की रानी चाहे दत्तक पुत्र की ही क्यों न हो लेकिन माता थी। उसके मातृत्व पक्ष का उद्घाटन अधिक से अधिक एकाध नाटक में ही हुआ है (झाँसी की रानी–पं॰ राजेश्वर गुरु, अंक २, दृश्य ३)।

मानवीय पहलू अछूता रहने के कारण नाटक की श्रेष्ठता के लिये आंतरिक संघर्ष की जो अनिवार्यता होती है, उसका भी अभाव इन नाटकों में उपलब्ध होता है।

इन नाटकों में अनेक ऐसे दृश्यों की अवतारणा हुई है कि जिनको रंगमंच पर प्रस्तुत करना लगभग असंभव सा है। लक्ष्मीबाई (कंचनलता सब्बरवाल, कष्टसाध्य दृश्य, अंक १ दृश्य २; अंक २, दृश्य ७) में जैसे नानासाहब पेशवा का गंगा के प्रवाह में पाँव छोड़कर संध्या करना। युद्ध, मारकाट, विपक्षियों के सर धड़ से अलग करना आदि। इस प्रकार के दृश्य लगभग असंभव होने से जो दृश्याभास नाटक में अभीष्ट होता है, वह संपन्न नहीं हो पाता।

दो घटनाओं के बीच जो कालांतर अपेक्षित है उसका स्मरण न रखते हुए दृश्यों की योजना हुई है। लक्ष्मीबाई (कंचनलता सब्बरवाल) दूसरे अंक के छठे दृश्य में स्त्री वेष में तथा सातवें दृश्य में पुरुष वेश में घोड़ा दौड़ाती हुई दिखाई गई है।

इनमें से जो थिएट्रिकल नाटक है उनमें ट्रिक सीन्स और ट्रान्स्फर सीन्स का भी पर्याप्त प्रयोग किया गया है। सच्चे नाट्य रसिक के लिये ऐसे दृश्य बचपन या खिलवाड़ जैसे लगते हैं।

थिएट्रिकल नाटकों की भाषा अत्यंत साधारण हिंदी उर्दू है जिसके प्रयोगों में कई स्थलों पर अशुद्धियाँ भी मिलती हैं। इन थिएट्रिकल नाटकों मे उर्दू ढंग के तुकबंदी के लटकों-झटकों, शेरों, गीतों की भरमार है (झाँसी पतन या झाँसी की रानी)।

इनमें से जो साहित्यिक नाटक हैं, इनमें भी वर्तमानकालिक हिंदी का प्रयोग किया गया है। यह भाषा साहित्यिक है, नाटक के लिये अपेक्षित सजीव वार्तालाप शैली की नहीं। भाषा चरित्रों के अनुसार बदलती नहीं। यहाँ तक कि अँग्रेज अफसर भी शुद्ध तत्सम हिंदी बोल लेते हैं।

'झाँसी पतन या झाँसी की रानी' नाटक में नाटककार ने ऐतिहासिक नाटक की दृष्टि से अक्षम्य अपराध किया है। वह है झाँसी की रानी के चरित्र को गिराना।

ऐतिहासिक नाटक की गंभीरता हास्य की अवतारणा करनेवाले दृश्यों का अवकाश नहीं रखती। 'झाँसीपतन' जैसे थिएट्रिकल नाटक को छोड़ किसी

नाटक में हास्य का अवलंब नहीं किया गया है। उल्लिखित नाटक में हास्य दृश्यों के प्रसंग यद्यपि मूल कथा से असंबद्ध हैं, फिर भी भावनाएँ असंबद्ध नहीं हैं। हाँ, बाजे बजाने के प्रश्न को लेकर जो फूट हिंदू मुसलमानों में आई है वह नितांत आधुनिक है।

सेनापति तात्या टोपे : पातीराम भट्ट

पातीराम भट्ट का लिखा 'तात्या टोपे' किशोरों के अभिनय योग्य, स्त्री पात्र-हीन नाटक है। इसे हम शालेय नाटक (स्कूल ड्रामा) कह सकते हैं। इस प्रकार के नाटक का प्रधान उद्देश्य रहता है नाटक के द्वारा इतिहास की शिक्षा विद्यार्थियों को देना। स्वाभाविकतया ऐसी रचनाओं में इतिहास प्रबल हो जाता है। और नाट्य क्षीण हो जाता है। पातीराम भट्ट द्वारा लिखित नाटक की अवस्था भी दुर्भाग्य से ऐसी ही हो गई है।

नाटक उपदेश प्रधान है। 'तात्या टोपे का युद्ध कौशल, अदम्य उत्साह एवं देशप्रेम किशोरों के लिए एक नई स्फूर्तिका संदेश वहन करता है।' (आमुख) उल्लिखित संदेश के अतिरिक्त नाटककार इस कृति के द्वारा यह भी सूचित करना चाहता है कि सन् १८५७ के स्वातंत्र्ययुद्ध की हार अंग्रेजों की सामर्थ्य के कारण नहीं, बल्कि हमारी स्वार्थलिप्सा तथा एक राष्ट्रीयता के अभाव के कारण हुई। नानासाहब पेशवा के वकील और सलाहकार अजीमुल्ला इस विषय में कहते :

'हिंदुस्तान की बात कौन सोचता है? दिल्ली के बादशाह सोचते हैं दिल्ली, आग्रा, लाहौर, अजमेर कायम रहे। बस, इसी में उनको खुशी है। आप पेशवा के गद्दी के अधिकारी हैं—आप सोचते हैं केवल कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद हासिल करके सीधे दक्खन में पहुँच जायें और मराठों पर फिर से हुकूमत पा जायें। झाँसी की रानी सोचती है झाँसी से कैसे अंग्रेजों को हटाया जाय। ग्वालियर के सिंधिया मध्य भारत को अपने झंडे के नीचे लाने की ही फिकर में हैं। आप ही बतलाइए महाराज! सारे हिंदुस्तान की बात कौन छोटे अथवा बड़े सोचते हैं?' (पृ० १८)

सन् १८५७ का स्वातंत्र्य समर क्यों विफल हुआ इसके संबंध में तात्या-टोपे का वक्तव्य द्रष्टव्य है—

'इस संघर्ष की सीढ़ी में मेरे साथी रहे, नाना साहब, अजीमुल्ला, टीका सिंह और ज्वालाप्रसाद जैसे दिग्गज। वे हवा हो गए। उसके बाद लखनऊ में भी टीका सिंह का साथ रहा। उस समय शत्रु भी मिले तो हे नरी लारेंस और हैव्लाक की तरह—वीरता की परख करनेवाले। उसके बाद शक्ति की ज्वलंत अग्निशिखा झाँसी की रानी के साथ सहयोग करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था,

वह भी गयी ! उसके बाद अधोगति शुरू हुई। पद-पद पर विश्वासघातकों से पाला पड़ा। ग्वालियर, भरतपुर, टौंक, बूँदी में एक ओर अपने पक्ष में अधम से अधम केवल नाम के बंधु मिले। मुझे हँसी आती है। लारेंस, हैव्लाक, नील से गौरव पूर्वक लड़ने के बाद अब मुझे अपने सामने दिखाई देते हैं शावर, स्मिथ और माइकेल जैसे तीन कौड़ी के अंग्रेज अफसर, जिनका नाम इतिहास बिल्कुल याद न रक्खेगा।' (पृ० ६०)

नाटक ६० पृष्ठों का है। तीन अंक हैं। पहले अंक में चार, दूसरे में पाँच और तीसरे में चार दृश्य मिलाकर कुल तेरह दृश्य हैं। दृश्यों के केवल स्थलों का संकेत मिलता है। दृश्य - स्थल के विशेष ब्यौरे नहीं दिए गए हैं, न दृश्यों का क्रम रखने में रंगमंच की सुविधा का स्मरण रखा गया है। दृश्य मे कालांतर का भाव भी विस्मृत सा रखा गया है।

नाट्य की दृष्टि से केवल कथोपकथन - स्वरूप ही यह नाटक है। व्यक्ति एक स्थलपर आकर बातचीत करते हैं। बातचीत समाप्त होने पर प्रस्थान करते हैं। इससे अधिक नाट्यात्मकता नाटक को प्राप्त नहीं है। पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान भी सप्रयोजन नहीं हैं।

नाटक की भाषा खड़ी बोली हिंदी है। अंग्रेज अफसरों के मुख में टूटी फूटी हिंदुस्तानी तथा कहीं कहीं अंग्रेजी रखी गई है। मुस्लिम पात्र भी हिंदी ही बोलते हैं। इन पात्रों की भाषा में जो उर्दू की पुट अपेक्षित थी, नहीं मिलती।

नाटक में चरित्र संख्या २८ से ३० तक है, जिसमें १५ से अधिक चरित्र प्रधान हैं। शालेय नाट्य की दृष्टि से यह संख्या समर्थनीय है, क्यों कि शालेय नाट्य का उद्देश्य होता है अधिक से अधिक छात्रों को रंगमंच पर लाकर उन्हें आत्मप्रदर्शन का अवसर दिया जाय। इस दृष्टि से यह संख्या समर्थनीय हो सकती है। इसे भी ऐतिहासिक नाटक की अपेक्षा नाट्यरूप इतिहास कहना अधिक समीचीन होगा।

उपसंहार

१. महाराष्ट्र के इतिहास से संबद्ध नाटक लिखनेवालों में सब के सब महाराष्ट्रीयेतर हिंदी भाषी लेखक हैं। स्वाभाविक ही वे महाराष्ट्र के इतिहास से अपरिचित हैं। जो परिचय उन्हें प्राप्त है वह ग्रंथों द्वारा उपलब्ध जानकारी से है। श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी', डा० श्यामबिहारी मिश्र तथा शुकदेवबिहारी मिश्र, श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी', श्री वृंदावनलाल वर्मा, डा० कंचनलता सब्बरवाल, पं० वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली' एवं जगदीशचंद्र माथुर ने महाराष्ट्र

के इतिहास की अधिकृत पुस्तकों से जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा की है। शेष नाटककारों ने ऐतिहासिक नाटक में आवश्यक ऐतिहासिक सजगता के भाव के प्रति उपेक्षा ही प्रकट की है।

२. सब के सब नाटक महाराष्ट्र के राजनैतिक इतिहास से संबंध रखते हैं। केवल पं० वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली' के नाटक में समर्थ रामदास के निमित्त कुछ सांस्कृतिक इतिहास की झलक मिलती है।

३. सभी नाटक घटनाप्रधान हैं, तथा प्रकरणात्मक। शैली की दृष्टि से सभी नाटकों में कालक्रमानुसारी उद्घाटनप्रधान शैली का अवलंबन किया गया है।

४. इन नाटकों में थिएट्रिकल तथा साहित्यिक दोनों प्रकार की प्रणालियों के नाटक मिलते हैं। थिएट्रिकल नाटकों का उद्देश्य अद्भुत द्वारा कुतूहलवर्धन द्वारा सस्ता मनोरंजन है। साहित्यिक नाटकों का उद्देश्य शिक्षा प्रदान करना है। अतीत की घटनाओं के चित्रण से वर्तमान के लिये सीख प्रदान करना इन नाटकों का ध्येय है।

५. ऐतिहासिक घटना व्यक्ति के जीवन को किस प्रकार प्रभावित करती है इसका सुंदर उदाहरण श्री जगदीशचंद्र माथुर के 'शारदीया' में मिलता है। अन्य नाटकों में ऐतिहासिक व्यक्तियों के लौकिक जीवन को ही अंकित किया गया है। अतीत चरित्रों के निजी जीवन को प्रकाश में लाने का प्रयत्न नहीं हुआ है न उन चरित्रों के मानवीय पहलू को स्पर्श करने की चेष्टा हुई है।

६. सभी नाटकों में वर्तमान काल की ही भाषा प्रयुक्त की गई है। 'शारदीया' को छोड़ अन्य नाटकों में काव्यात्मकता नहीं प्राप्त होती। 'शारदीया' की काव्यात्मकता निस्सन्देह ऊँची कोटि की है।

७. इतिहास के प्रतिकूल हास्य का अवलंबन कुछ इने गिने नाटकों में ही हुआ है। पं० वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली' के हास्य को छोड़ अन्य नाटकों का हास्य भद्दा एवं भोंडा है।

८. थिएट्रिकल शैली के नाटक अभिनयोपयोगी न होते हुए भी रंगमंचोपयोगी हैं। साहित्यिक नाटकों में रंगमंचीय आवश्यकताओं की अवहेलना की गई है। केवल पं० वेणीराम त्रिपाठी 'श्रीमाली' का 'छत्रपति शिवाजी या समर्थ रामदास', मोहन लाल महतो 'वियोगी' का 'अफजलवध', डा० रामकुमार वर्मा का 'नाना फड़नवीस' एवं श्रीजगदीशचंद्र माथुर का 'शारदीया' अवश्य अभिनयोपयोगी हैं।

*

'पृथ्वीराजरासउ' के कुछ शब्दार्थों पर पुनर्विचार

[शंभुसिंह मनोहर]

डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित पृथ्वीराजरासउ का एक वैज्ञानिक संस्करण साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी से प्रकाशित हुआ है। उक्त ग्रंथ में प्रस्थापित मान्यताओं तथा उसमें स्वीकृत पाठ का विवेचन एक स्वतंत्र प्रबंध की वस्तु है, जो प्रस्तुत लेख का प्रतिपाद्य नहीं। यहाँ केवल कुछ शब्दार्थों की ही चर्चा उद्दिष्ट है तथा कुछ विनम्र शंकाएँ हैं जिन्हें विद्वान् संपादक एवं रासो के विज्ञ अध्येताओं के विचारार्थ निवेदन करना ही इष्ट है। शब्दार्थों के संदर्भ में यत्र तत्र जो पाठालोचन विषयक चर्चा हुई है वह आनुषंगिक रूप से ही।

१. लहु गुरु मंडि त छंडिहउं पिंगल भरह भरथ्थ।-पृष्ठ ८, पद्य ५, पंक्ति २

डा० माताप्रसाद ने उक्त पाठ मानते हुए इस तंक्ति का अर्थ यों किया है—'लघु गुरु का मंडन करके पिंगल [के छंद-सूत्र] भरत [के नाट्यशास्त्र] और महाभारत को [पीछे ?] छोड़ दूँगा -उनसे बढकर रचना करूँगा।'

प्रस्तावित अर्थ - विद्वान् संपादक द्वारा गृहीत पाठ हमें अशुद्ध एवं भ्रांत प्रतीत होता है क्योंकि यह भारतीय कवियों की विनयभावना के अनुरूप नहीं। हमारे यहाँ श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कवि भी अपने विषय में ऐसी आत्मश्लाघात्मक दर्पोक्ति नहीं करता कि मै काव्यरचना में अपने पूर्ववर्ती कवियों को पीछे छोड़ दूँगा या उनसे बढकर काव्यरचना करूँगा। तद्विपरीत संस्कृत कवियों से लेकर हिंदी कवियों तक ने काव्यारंभ में प्रायः अपनी विनम्रताप्रकाशन की परपरा का ही निर्वाह किया है। उदाहरणार्थ तुलसी जैसे समर्थ कवि ने भी यही कहा —

भाषा भनिति भोरि मति मोरी
हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी।—रामचरित मानस

इसी प्रकार जायसी ने भी अपने को 'सब कवियों का पिछलगा' कहकर इसी विनयपरंपरा का निर्वाह किया है—

हौं सब कबिन्ह केर पछिलगा।
किछु कहि चला तबल देई डगा।—पदमावत

उपर्युक्त संदर्भ में डा० गुप्त द्वारा गृहीत पाठ की प्रामाणिकता हमें संदिग्ध प्रतीत होती है। ध्यान देने की बात यह है कि उक्त पद्य के ठीक पूर्ववर्ती पद्य में वही चंद अपनी विनम्रता प्रकट करता हुआ यों कहता है —

गिरा सेष बानी कवी कव्व बंधं।
जिनै सेस उच्छिष्ट कवि चंद छंदं॥

एक छंद में कवि अपनी विनम्रता व्यक्त करता हुआ यह कहे कि अन्य कवियों द्वारा रचित काव्यप्रबंध के शेष उच्छिष्ट को ही वह छंदबद्ध कर रहा है और दूसरे ही छंद में यह दावा करे कि वह काव्यरचना में सबको पीछे छोड़ देगा, इसमें कितना अंतर्विरोध एवं भावविसंगति है, इस पर पाठक स्वयं विचार करें।

अतः इस छंद में डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा गृहीत पाठ के स्थान पर हम डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं श्री नामवर सिंह द्वारा मान्य पाठ को ही शुद्ध मानते हैं जिसे कविराव मोहन सिंह ने भी अपने द्वारा संपादित रासो में स्वीकार किया है। वह यों है—

लहु गुरु मंडित खंड यहि पिंगल अमर भरथ्थ॥

२. भुवगोल लिपित दिष्पत सहीर।—पृष्ठ १०, पद्य १, पंक्ति ६

इस पंक्ति में आए 'सहीर' शब्द का अर्थ 'हेलापूर्वक' करते हुए डा० गुप्त ने पूरी पंक्ति का अर्थ यों किया है—'(कन्नौजराज ने) जा कुछ लिखित भूगोल (भू वृत्त) था उसको हेलापूर्वक देखा।'

प्रस्तावित अर्थ—डा० गुप्त द्वारा इस पंक्ति के किए गए अर्थ से ऐसा ध्वनित होता है जैसे कोई भूगोल की पुस्तक कन्नौजराज के सामने पड़ी हो और उसे उन्होंने हेलापूर्वक (?) देख लिया हो। साहित्य का सामान्य विद्यार्थी भी यह जानता है कि 'हेला' नायिकाओं की एक सहज शृंगारिक चेष्टा, जिसे 'हाव' की संज्ञा दी गई है, का ही एक भेद है तथा उसी अर्थ में प्रायः रूढ हो गया है। 'हाव' के चार भेदों में अयत्नज हाव भी एक है, जिसके अंतर्गत हेला, विलास, विभ्रम, किलकिंचित्, विहृत, हसित और चकित की गणना की गई है। यद्यपि कुछ आचार्यों ने (जैसे भोज आदि) इन्हें पुरुषों से भी संबद्ध माना है तथापि सामान्यतया 'हेला' से नायिकाओं की शृंगारिक चेष्टाओं का ही बोध होता है। अतः कन्नौजराज के प्रसंग में हेलापूर्वक देखना निरा असंगत और हास्यास्पद है। यहाँ वर्णन कन्नौजराज के दृष्टिनिक्षेप का नहीं वरन् राजसूय यज्ञ के निमित्त उनके द्वारा लिखित भू-वृत्त की जानकारी प्राप्त करने का है।

वस्तुतः 'सहीर' शब्द का मूल रूप 'सुहीर' (अप०) < 'सुधीर' (सं०) है; जिसका अर्थ है विशिष्ट धीरता या दृढ़ संकल्प युक्त। यह शब्द यहाँ कन्नौजराज के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। तदनुसार पूरी पंक्ति का अर्थ होना चाहिए—'उस सुधीर (दृढ़-संकल्पयुक्त) [कन्नौजराज] ने समस्त लिखित भूवृत्त का अवलोकन किया।'

'सहीर' के मूल अपभ्रंश रूप 'सुहीर' (सं० सुधीर) के लिये देखिए हेमचंद्र (८, १, १८७)।

साथ ही राजस्थान भारती (भाग १, अंक १, अप्रैल १९४६) में प्रकाशित डा० दशरथ शर्मा एवं प्रो० मीनाराम रँगा के लेख 'द ओरिजिनल पृथ्वीराज रासोः ऐन अपभ्रंश वर्क' में उद्धरण स्वरूप इस पंक्ति का जो पाठ, उसके अपभ्रंश रूपांतर सहित दिया गया है, वह भी द्रष्टव्य है। टेक्स्ट आफ द बीकानेर रिसेंशन - द अपभ्रंश रेंडरिंग—

'भुवगोलु लिखित दिख्ये सहीर'। 'भूगोलि लिखिअ देक्खिअ सुहीरु'

नीचे संपादकीय पादटिप्पणी में 'सुहीर' की व्याख्या यों की गई है— 'सुहीर = सुधीर।' विद्वान् लेखकों द्वारा रासो के हिंदी एवं अपभ्रंश पाठ का अँग्रेजी रूपांतर भी प्रस्तुत किया गया है जिसमें 'सहीर' (अप० सुहीर) का अँग्रेजी गद्यानुवाद इस तरह किया गया है—'दिस रेजोल्यूट (रूलर)'।

अतः 'सहीर' शब्द का डा० गुप्त द्वारा किया गया 'हेलापूर्वक' अर्थ निराधार है।

३. जिम गामिनी सभी बुधजन उविट्ठ। —पृष्ठ १४, पद्य १, पंक्ति ४०

डा० गुप्त ने पूर्वपंक्ति सहित इसका अर्थ यों किया है—'मंद आदर (निरादर) के कारण वसीठ उठकर चले गए जैसे ग्रामीण (ग्राम-प्रमुख) की सभा से बुधजन उद्वेष्टित (बंधनमुक्त) हुए हों।'

प्रस्तावित अर्थ—उपर्युक्त पंक्ति मे 'उविट्ठ' शब्द के अर्थ में काफी क्लिष्ट कल्पना की गई है। 'उविठ्ठ' का सीधा सादा अर्थ 'उठ जाना' है। 'बंधनमुक्त' शब्द से यह ध्वनित होता है जैसे बुधजनों को ग्रामसभा मे बाँधकर रखा जाता हो। यहाँ सीधा सा अर्थ यह है कि निरादृत होने के कारण दूत वैसे ही उठकर चले गए जैसे ग्रामसभा के बीच से बुद्धिमान उठकर चले जाते हैं।

ग्रामसभा में बैठने का जिनको अनुभव है वे जानते हैं कि बात बढ़ने पर वहाँ लोग तुरंत गाली गलौज के स्तर पर उतर आते हैं। अतः समझदार व्यक्ति ऐसे मौके पर चुपचाप वहाँ से खिसक जाते हैं। यहाँ 'उविट्ठ' शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

४. अध चषन लिषन छिति नषन कीन। —पृष्ठ २०, पद्य ५, पंक्ति ८

डा० गुप्त ने उपर्युक्त पंक्ति में 'अध चषन' का अर्थ 'अर्द्ध नेत्रों से' किया है—"अर्द्ध (निमीलित) नेत्रों से (देखती हुई) वे नखों से क्षिति पर लिख रही थीं।'

प्रस्तावित अर्थ—वाच्यार्थ की दृष्टि से डा० गुप्त का अर्थ चाहे ठीक हो, परंतु काव्यरूढ़ि के अनुसार इसका अर्थ 'अधोदृष्टि' ही संगत प्रतीत होता है। वस्तुतः अधोदृष्टि से (अर्थात् नमित मुख) नखों से धरती खरोचना नायिकाओं के हावभाव-वर्णन की एक बहुप्रयुक्त काव्यरूढ़ि है जिसका अनेक प्राचीन काव्यों में उल्लेख मिलता है। अतः उक्त संदर्भ में हमारे विचार से 'अध चषन' का अर्थ 'अर्द्ध निमीलित दृष्टि' न होकर 'अधोदृष्टि' (लीला या विभ्रम से नीचे देखना) है। उदाहरणार्थ जैन कवि कीर्तिवर्द्धनरचित 'सदयवत्स सावलिंगा चउपई' की निम्न पंक्ति द्रष्टव्य है जो यहाँ प्रस्तावित अर्थ की पुष्टि करती है—

बाम चरण अँगूठे नखे खिण खिण नीचो जोइ भूमि लिखे।

यहाँ 'नीचो जोइ' शब्दावली से 'अध चषन' का अर्थ 'अधोदृष्टि' होने का स्पष्ट संकेत मिलता है। 'संदेश रासक' एवं 'ढोलामारू रा दूहा' में भी इस काव्यरूढ़ि का प्रयोग हुआ है यद्यपि उनमें अधो-दृष्टि-वाचक शब्दों का उल्लेख नहीं हुआ है —

गाहा तं निसुणे विगु गयमरालगइ
    चलणंगुट्ठि धरत्ति स नजिअर उलिहइ ॥—संदेश रासक, ४१
पंथी हाथ संदेसड़इ, धण बिललंती देह।
    पगसूं काटइ लीहटी, उर आँसुओं भरेह ॥ १३७॥
—ढोलामारू रा दूहा

अतः काव्यरूढ़ि के संदर्भ में यहाँ संकेतित अर्थ विचारणीय है।

५. तजहि पिय कंठ जिम पत्त गोरी – पृष्ठ २६, पद्य ७, पंक्ति ६

डा० माताप्रसाद ने पूर्वपंक्ति सहित इसका अर्थ यों किया है— 'गौरांगनाएँ अपने प्रियों (पतियों) के कंठ छोड़ रही हैं, जैसे (वृक्ष के) पत्तों को छोड़ देते हैं।'

प्रस्तावित अर्थ—यहाँ 'पत्तों को छोड़ देते हैं' शब्दावली से यह व्यंजना होती है जैसे छोड़नेवाला (कर्ता) कोई दूसरा है। अर्थात् पत्तों का कर्म के रूप में प्रयोग किया गया है—जब कि यहाँ पत्ते कर्ता हैं, कर्म नहीं। अतः उद्दिष्ट भावानुसार अर्थ यों होना चाहिए—'पत्तों के समान'। अर्थात् जैसे पत्र तरु-शाखाओं को छोड़कर झर पड़ते हैं वैसे ही प्रियाएँ अपने प्रियों से आलिंगनमुक्त हो विलग हो रही हैं।

६. पिय प्रथीराज रिपू किअ तउ बिपरीत कीन विरंचि ॥
—पृष्ठ २६, पद्य ८, पंक्ति २

(प्रसंग—शत्रु रमणियां अपने पतियों से कह रही हैं—) 'हे प्रिय, पृथ्वीराज को जो तुमने शत्रु किया तो विधाता ने [सब कुछ] उलटा कर दिया।'

प्रस्तावित अर्थ—इस पंक्ति का अर्थ हमारे विचार से यों किया जाना चाहिए—'हे प्रिय ! पृथ्वीराज को जो तुमने शत्रु किया तो (मानो) विधाता को ही अपने विपरीत (प्रतिकूल) किया।' अर्थात् उससे शत्रुता करना मानो दैव को ही अपने पर प्रकुपित करना है।

'विधाता ने उलटा कर दिया'—यह अर्थ असंगत है।

७. युवजन युवत्ति अनु करिज साज।—पृष्ठ ३०, पद्य १०, पंक्ति १०

(प्रसंग—पृथ्वीराज के आक्रमण के भय से पंगराज जयचंद के राज्य में छाए आतंक का वर्णन है।)

डा० गुप्त ने पूर्वपंक्ति सहित इसका अर्थ यों किया है—'सभी राज्यों में पुण्य नहीं सुनाई पड़ रहे हैं और युवतियों ने आसक्ति की है।'

प्रस्तावित अर्थ—यहाँ पृथ्वीराज के जयचंद पर होने वाले आक्रमण के संदर्भ में 'युवतियों ने आसक्ति की है' का क्या अर्थ है ? बात पृथ्वीराज के आक्रमण की चल रही है न कि युवतियों की प्रेमलीला की। पंक्ति में आए 'युवजन' शब्द का अर्थ करने की भी विद्वान् संपादक ने आवश्यकता नहीं समझी। साथ ही 'साज' का अर्थ 'आसक्ति (साज > सज्ज > सज्ज = आसक्ति करना)' भी खींचतान करके ही बिठाया गया है। हमारी समझ में इस तथा आगे वाली पंक्ति का अर्थ यों किया जाना चाहिए—'(हे पृथ्वीराज)' समस्त युवक और युवतीजन (युवत्ति अनु) तुम्हारी (यह कहकर) शोभा (साज) कर रहे हैं कि संयोगिता के योग्य वर आज तुम्हीं हो। अर्थात् सभी प्रेमी युगल तुम्हारी परस्परानुरूप जोड़ी की मुक्त कंठ से सराहना कर रहे हैं। यहाँ 'युवतिअनु' शब्द एकात्मक है— युवत्ति अनु < युवतिजन। पाठांतरों में भी 'युवतीजन युवजन' ऐसा मिलता है जो हमारे भाव की पुष्टि करता है।

८. निर्माली हथमेव मालवधर मेवाड़ मंडोवर।

—पृष्ठ ३७, पद्य १८, पंक्ति ३

डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'निर्माली हथमेव' का अर्थ 'निर्माल्य जिस प्रकार हाथ में हो' ऐसा किया है।

प्रस्तावित अर्थ— यह प्रसंगानुसार असंगत प्रतीत होता है। निर्माल्य देवार्पित प्रसाद का वाचक है, जिसमें एक सात्त्विक समर्पण का भाव जुड़ा हुआ

है जबकि यहाँ प्रसंग युद्धजन्य रक्तपात से उपलब्ध अधिकृत प्रदेशों का है। एक समर्पित वस्तु है तो दूसरी अधिकृत। भला दोनों में क्या साम्य ?

अतः मालव, मेवाड़, मँडोवर आदि प्रदेशों को जीतकर निर्माल्य की भांति हस्तगत करने की उपमा अपने आप में एक भावविसंगति है।

तद्विपरीत हमारा अनुमान है कि यहाँ 'निर्माली' का अर्थ 'निर्माल्य' न होकर 'निम्मार' या निमाड़ प्रदेश है जो खँडवा के आसपास है। यहाँ कवि दूती के मुख से जयचंद द्वारा विजित प्रदेशों का उल्लेख करा रहा है। अतः इस पंक्ति में वर्णित अन्य भौगोलिक स्थलों—नीमच, बैरागर, कर्णाट, करवीर आदि के समान यहाँ 'निर्माली' 'निमाड़' प्रदेश का ही वाचक जान पड़ता है—'निर्माल्य' का नहीं जिसमें कोई भावसंगति नहीं है। इसका एक अन्य पाठांतर 'निम्माले' भी मिलता है जिसे श्री नरोत्तमदास स्वामी ने अपने लघुतम संस्करण में स्वीकार किया है।

९. वल्ली वसंता हरे। —पृष्ठ ३८, पद्य २०, पंक्ति ३

डा० गुप्त ने इसका अर्थ यों किया है—'वल्ली [क्यों वल्ली है ?] क्योंकि वह वसंत को ग्रहण करती है।'

प्रस्तावित अर्थ—इस पंक्ति में 'हरे' का अर्थ 'हरण करती है' या 'ग्रहण करती है' न लगाकर 'हरी भरी होती है' या 'पुष्पित होती है' मानना क्या अधिक संगत न होगा ? अर्थात् वल्ली वसंत में हरी भरी होने के कारण ही वल्ली है। 'वसंत को ग्रहण करती है'—इस शब्दावली से कवि के उद्दिष्ट भाव हरी भरी होने या पुष्पित होने की स्पष्ट व्यंजना नहीं होती।

१०. पुट्ठि परमारि पचारिय।—पृष्ठ ४६, पद्य ११, पंक्ति ३

डा० गुप्त ने 'परमारि' का अर्थ संदिग्ध मानते हुए कोष्ठक में '(पट्टराज्ञी ?) दिया है। यह भ्रांत है।

प्रस्तावित अर्थ—परमारी का अर्थ 'पट्टराज्ञी' नहीं। परमारी वस्तुतः पृथ्वीराज की परमारवंशीय रानी (इंछिनी) थी जो कैमासवध के समय पृथ्वीराज के पृष्ठभाग में खड़ी थी। क्षत्रियों में रानियों का उल्लेख उनके नाम से न किया जाकर उनके पितृवंशीय गोत्र से करने की सामान्य परिपाटी है। उदाहरणार्थ हाड़ा वंशीय रानी को हाड़ीजी, भाटी वंशीय को भटियानीजी आदि कहकर संबोधन किया जाता है। अतः यहाँ 'परमारी' का पट्टराज्ञी से कोई संबंध नहीं है।

११. इमि परठ अयास अवास तह जिमि निसि नसित नषत्रपति।
—पृष्ठ ४६, पद्य ११, पंक्ति ६

डा० माताप्रसाद ने इस पंक्ति का अर्थ यों किया है—'कयमास आकाश [-चुंबी] आवास (प्रासाद) से इस प्रकार गिरा जैसे निशा में नक्षत्रपति (चंद्रमा) विनष्ट होकर गिरा हो।

प्रस्तावित अर्थ—मेरे विचार से डा० गुप्त द्वारा गृहीत इस पंक्ति का पाठ ही सदोष है। इसे स्वीकार करने पर प्रश्न होता है कि निशा में नक्षत्रपति (चंद्रमा) कब विनष्ट होकर गिरता है? उल्कापात होते तो देखा व सुना गया है परंतु चंद्रमा को आकाश से गिरते अद्यावधि न देखा है न सुना है। वस्तुतः इस पंक्ति का शुद्ध पाठ वह है जो डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं डा० नामवर सिंह ने ग्रहण किया है —

यों परयो कैमास आवास तें जानि निसानन छित्रपति।
— संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृष्ठ ६८

अर्थात् कैमास (वाणाहत होकर) आवास से यों गिरा जैसे किसी छत्रपति (राजा या प्रतापी सम्राट्) का निशान (ध्वज) गिरा हो।

डा० गुप्त के 'श्रयास आवास' तथा 'नसिन नषत्रपति' पाठ में, जैसे कि प्रायः अन्यत्र भी, क्लिष्ट कल्पना की बोझिलता ही देखने में आती है। उपमागत अनौचित्य तो इसमें है ही।

११. अप्पु राय वलि वनि गयु। —पृष्ठ ५१, पद्य १४, पंक्ति १

इस पंक्ति में आए 'वलि' शब्द का अर्थ डा० गुप्त ने 'वल्=लौटना, वापिस आना' किया है।

प्रस्तावित अर्थ—यद्यपि डा० गुप्त द्वारा निर्देशित 'वलि' शब्द का उपर्युक्त अर्थ मान्य है, तथापि प्राचीन राजस्थानी साहित्य में 'वलि' का इससे भिन्न एक अन्यार्थ भी होता है और वह है 'पुनः, फिर या तदनंतर'। यहाँ 'वलि' शब्द इसी अन्यार्थ में प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है क्योंकि 'लौटने' या 'चले जाने' का वाचक शब्द यहाँ 'गयु' आ गया है। अतः 'वलि' का वाचक शब्द 'फिर' या 'तदनंतर' ही उद्दिष्ट है। अर्थ होगा—'तदनंतर स्वयं राजा (पृथ्वीराज) वन को चला गया'। इस अर्थ में 'वलि' शब्द का प्रयोग प्राचीन राजस्थानी साहित्य में प्रचुर हुआ है। कुछ उदाहरण—

(१) वलि मत पड़ज्यो एहवो दुकाल।—समयसुंदर, चंपक सेठ चौपई
(२) मीरां नइ वलि दीधा गाम।—हम्मीरायण
(३) वलै पाय रैणा तरी रघुबीरं।—सूरजप्रकाश
(४) औरंग वलै अजैगढ़ आयो। - राजरूपक

उपर्युक्त पंक्तियों में 'वलि' या 'वलै' पुनः अथवा फिर के अर्थ ही में प्रयुक्त हुआ है विवेच्य पंक्ति में भी यही अर्थ उद्दिष्ट है।

१२. एक रवि मंडल भेदहि एक ति करिसह दंदु।—पृष्ठ ७६, पद्य ४, पंक्ति २

(प्रसंग शुभाशुभ शकुनों का फल बतलाते हुए चंद पृथ्वीराज से कह रहा है) डा० गुप्त का अर्थ है —

'एक [प्रकार का शकुन] [योद्धाओं को रण में] वीरगति दिलाकर रवि-मंडल-भेदन [उपस्थित] करेगा और एक [प्रकार का शकुन] द्वंद्व (सुख दुख) [उपस्थित] करेगा।'

प्रस्तावित अर्थ—इस पंक्ति में आए 'दंदु' शब्द का अर्थ डा० गुप्त ने कोष्ठक में 'सुख-दुख' किया है किंतु यहाँ प्रसंगतः 'दंदु' का अर्थ केवल 'दुःख' या 'क्लेश' है—सुख नहीं। शुभ शकुन योद्धाओं को वीरगति दिलाकर रवि-मंडल-भेदन का सौभाग्य देगा तो दूसरी ओर अशुभ शकुन द्वंद्व अर्थात् दुःख या क्लेश उपस्थित करेगा। यह ठीक है कि 'दंदु' का मूल रूप 'द्वंद्व' है जिसमें 'सुख-दुख' दोनों अंतर्भावित हैं, तथापि कभी कभी 'दंदु' शब्द का एकांततः दुःख के अर्थ में ही प्रयोग होता है। इसके इस विशिष्ट एवं एकार्थवाची प्रयोग के उदाहरणस्वरूप यह पंक्ति रखी जा सकती है—

दुसह दुराज प्रजानु को क्यों न बढ़ै दुख दुंद।—बिहारी

१३. सुर णर टट सालं कुसुमित लालं अलि जालं।-पृष्ठ ८२, पद्य ११, पंक्ति६

डा० गुप्त ने इस पंक्ति का अर्थ यों किया है—'तुम्हारे तट पर सरकंडे नरकुल और साल लाल (सुंदर) कुसुमित होते हैं और [उन पर] अलि-समूह [गुंजार करता] रहता है।'

प्रस्तावित अर्थ —यहाँ गंगा की शोभा तथा महिमा का वर्णन है। उपर्युक्त पंक्तियों में 'सुर णर' का अर्थ डा० गुप्त ने जो सरकंडे और नरकुल किया है वह हमें युक्त नहीं जान पड़ता। गंगातट पर भला कौन से सरकंडे और नरकुल होते हैं? दूसरे, दोनों प्रायः समानार्थक हैं।

अतः हमारे विचार से यहाँ 'सुर णर' का अर्थ 'देवता और मनुष्य' है, सरकंड और नरकुल नहीं। पूरी पंक्ति का अर्थ तब यों होना चाहिए—

तुम सुर व नरों (की वंद्य हो) एवं तुम्हारे तट पर सुंदर साल (वृक्ष) कुसुमित हैं जिन पर अलिकुल निरंतर गुंजन करता रहता है।

अथवा

तुम्हारे तट पर सुर व नर (निवास करते हैं) एवं कुसुमित साल वृक्षों पर सुंदर अलिकुल नित्य गुंजन करता रहता है।

अतः 'सुर नार' को देवों एवं मानवों का वाचक मानना संगत होगा जिनका गंगावर्णन के प्रसंग में उल्लेख परंपरापुष्ट है।

१४. अमर छुरि करिज।—वही पद्य, पंक्ति १२

इस पंक्ति का अर्थ यों किया गया है 'तुम अमरों (देवताओं) के लिए छलकारिणी (?) हो।'

प्रस्तावित अर्थ—गंगा नदी अमरों के लिये भला कैसे छलकारिणी है? इसमें संपादक ने यदि कोई व्याजस्तुति सोची हो तो वह हमारे लिये तो अगोचर ही है। इस पंक्ति का अर्थ क्या यों नहीं किया जा सकता—तुम क्षर (अर्थात् नाशमान या मरणशील मानवों) को अमर करनेवाली हो अर्थात् अमरत्वदायिनी हो।

अथवा

तुम्हारी छुरि (क्षार < क्षार - तटधूलि) अमर करनेवाली है; मोक्षदायिनी है।

परंतु देवताओं के साथ छल करनेवाला अर्थ तो गंगा के माहात्म्य के अनुकूल नहीं पड़ता।

१५. उभय कनक सिंभ भ्रिंग कंठोत्र लीला।—पृष्ठ ८४, पद्य १२, पंक्ति १

उपर्युक्त पंक्ति में आए 'भ्रिंग' शब्द का अर्थ डा० गुप्त ने टीका में 'मृगों की कंठध्वनि' किया है।

प्रस्तावित अर्थ—पाठ में शब्द 'भ्रिंग' है 'मृग' नहीं। अतः अर्थ 'भ्रमरध्वनि' होना चाहिए। मृगों की ध्वनि कदाचित् कंठस्वर के उपमान के रूप में काव्य में गृहीत नहीं हुई है। इसे छापे की अशुद्धि भी मान लिया जाता परंतु शुद्धिपत्र में इसका कोई संशोधन नहीं किया गया है। वस्तुतः कंठध्वनि के लिये भ्रमरगुंजन काव्य का अति प्रचलित उपमान है। सूर ने भी भ्रमरगुंजन में यमुना के विरहजन्य प्रलाप की उत्प्रेक्षा की है।

१६. ति लग्गि कट्टि जेहुरो सुभाय सोभ पिंडुरी॥

—पृष्ठ ८६, पद्य १४, पंक्तियाँ ४-५

इन पंक्तियों का अर्थ यों किया गया है—'ऐसी कटी हुई जेहुरी (?) [सदृश] वे हैं! उनकी पिंडलियाँ स्वाभाविक रीति से शोभित हैं।'

प्रस्तावित अर्थ - इन पंक्तियों में आए 'जेहुरी' शब्द का अर्थ डा० गुप्त संदिग्ध मानते हैं। हमारी समझ में 'जेहुरी' का अर्थ यहाँ एक पादाभूषण विशेष है, जिसे पाजेब भी कहते हैं। तदनुसार अर्थ यों होना चाहिए—

'ति लग्गि [तीन लड़ीवाली; तिहरी] कटी हुई [बनी हुई; सुंदर] जेहरी (पाजेब) उनकी पिंडलियों में सहज शोभित हो रही है।'

जेहरी या जेहुरी का नारी-आभूषण-वर्णन के प्रसंग में बहुधा उल्लेख हुआ है। यथा—

(१) पग जेहरि बिछियन की झमकनि।—सूर

(२) पग जेहरि जंजीरनि जकर्यो। - वही

(३) जेहरि जयकंकन कलित केसवदास सुजान।
माला साला सुभ सभी सीमा सम सोपान॥—केशव

यहाँ पिंडलियों का वर्णन चल रहा है अतः 'जेहुरी' शब्द को पाजेब का वाचक मानना संगत है। 'तिलग्ग' का अर्थ 'तिहरी', त्रिविध लगी हुई' या 'तीन लड़वाली है' —तीन लर, तिलर या तिलग्ग।

१७. जु नप्पइ मोर तंबोर सुढार।—पृष्ठ १०१, पद्य २५, पंक्ति ३

डा० गुप्त का अर्थ है—'मोर (श्वपच, चांडाल) जब ताबूल की ढार (पीक) फेंकता है।'

प्रस्तावित अर्थ—इस पंक्ति में आए 'मोर' शब्द का अर्थ चांडाल निराधार है। यह ठीक है कि मोर एक अंत्यज वर्ग का भी वाचक है जिससे चंद्रगुप्त मौर्य का संबंध भी कुछ विद्वान् जोड़ते हैं, तथापि यहाँ मोर शब्द का अर्थ हमारी समझ में 'मोरी' या 'नाली' है।

प्रसंग यहाँ पट्टनपुर के वैभव का चल रहा है। कवि बताना चाहता है कि नागरजन जब ताबूल का रस मोरी में थूकते हैं तो उसकी अतिशयता के कारण कीचड़ हो जाता है। अर्थात् वे भरपूर ताबूल सेवन करते हैं।

यहाँ मोर का अर्थ श्वपच या चाण्डाल मानने में आपत्ति यह है कि ताबूल का सेवन श्वपचों या चांडालों का नहीं, अपितु शिष्ट एवं सुसंस्कृत नागरजनों का लक्षण है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद' में इसका प्राचीन नाम 'नागवल्ली' कहा है जो नागरजनों एवं नागरिकाओं का ही शृंगार माना गया है —

एकैव वल्लिषु विराजति नागवल्ली।
या नागरीवदन चंद्रमलंकरोति॥

महाकवि माघ ने स्वच्छ जल से धुले अंग, ताबूलद्युति से जगमगाते होंठ और महीन निर्मल हलकी-सी साड़ी को ही तो विलासिनियों का वास्तविक शृंगार माना है —

स्वच्छाम्भः स्नपनविधौतमङ्गमोष्ठस्ताम्बूलद्युतिविशदो विलासिनाम् ॥

नैषध में बताया गया है कि राजा भीम ने अपने जामाता को सुंदर मणि-खचित पीकदान दहेज में दिया था (१६-२७) जैसा कि राजस्थान के राजकुलों में आज भी दिया जाता है। अतः तांबूलसेवन के पीछे जो परंपराएँ हैं वे आभिजात्य अथवा कुलीन वर्ग की ही हैं; श्वपच अथवा चांडाल वर्ग की नहीं। फलतः डा० गुप्त द्वारा मान्य अर्थ हमें असंगत प्रतीत होता है। रहा 'मोरी' शब्द के तत्कालीन प्रयोग का प्रश्न तो रासोकार से भी पहले अमीर खुसरो इसका प्रयोग कर चुके हैं—

चार महीने बहुत चले, और महीने थोरी।
अमीर खुसरो यों कहे तू बता पहेली मोरी॥ उत्तर मोरी

चूँकि पान की पीक मोरी में ही थूकी जाती है अतः वैसे भी 'मोर' का अर्थ नाली या मोरी संगत प्रतीत होता है।

१८. कुसंभ सार उडड नट्टरी। —पृष्ठ १११, पद्य ३८, पंक्ति १०

डा० गुप्त का अर्थ है—'कुसुंभी साड़ी पहने हुए वे ओड्र (उड़ीसा के) नृत्य करने लगी।'

प्रस्तावित अर्थ—यहाँ 'उड्ड' का अर्थ 'उड़ीसा के नृत्य' करना मात्र क्लिष्ट कल्पना है। गुप्त जी यदि 'उड्ड' का अर्थ 'उड़ीसा के नृत्य' करते हैं तो उनके द्वारा प्रयुक्त 'पहने हुए' का वाचक शब्द कौनसा है क्योंकि पाठ में तो इस क्रिया का वाचकत्व किसी शब्द से होता नहीं। दूसरे 'औड्र नृत्य' भला नृत्य का कौनसा भेद है ? हमें तो 'उड्ड' का सीधा सादा अर्थ 'ओढ़ कर' या 'पहन कर' ही संगत लगता है। अर्थात्—'कुसुंभी साड़ी ओढ़कर (पहन कर) वे नृत्य करने लगीं।'

१६. अंभोरुह माणंद (मानंन ?) जोय लरिसो
(लुरिसो ?) डाडिम्म लो बीयलो।—पृष्ठ ११०, पद्य ७, पंक्ति १

इस पंक्ति में आए 'लरिसो' का संभावित रूपांतर 'लुरिसो' (लौटती है) मानकर डा० माताप्रसाद गुप्त ने अर्थ किया है—'जिसके अँभोरुह (कमल) सदृश आनन (!) पर ज्योति लौटती रहती है, [जिसके दाँत] दाड़िम के बीज के सदृश हैं।'

प्रस्तावित अर्थ इस पंक्ति में शब्दों की खासी अच्छी खबर ली गई है। 'माणंद' में उच्चारणसाम्य के आधार पर 'आनन' एवं 'लरिसो' में 'लुरिसो ?' की उद्भावना कर एक विचित्र स्थिति उत्पन्न की गई है। परंतु शब्द जब स्वयं उद्दिष्ट अर्थ की व्यंजना में समर्थ हैं तो यह खींचतान अनावश्यक है।

वस्तुतः 'मार्यांद' शब्द का अर्थ यहाँ सदृश या समान है जिसका मूल रूप है 'मानिंद' (फा०)। राजस्थानी में इसका विकृत रूप 'मार्यांद' अति प्रचलित है। इसी प्रकार 'लरिसो' का अर्थ 'लड़ या लड़ सदृश' है जो यहाँ दंतावलि का वाचक है। तदनुसार पूरी पंक्ति का अर्थ यों किया जा सकता है—

'उसकी [मुख-] ज्योति कमल के मानिंद है एवं लड़ [दंतपंक्ति] जो है (लरि सो) वह दाड़िम के दानों सी [सुंदर] है।'

डा० गुप्त ने अपनी अर्थप्रक्रिया में शब्दों की अनावश्यक तोड़-मरोड़ की है ('मार्यांद' = मानन ? = आनन ? एवं 'लरिसो' = लुरिसो = लौटती है ?)।

२०. भय टामंक दिस्सइ न दिसि बहु पष्षर भहराउ।

—पृष्ठ १४३, पद्य ४, पंक्ति १

उपर्युक्त पंक्ति में आए 'टामंक' शब्द का अर्थ डा० गुप्त ने 'धुंधलाइट' किया है जो निराधार है।

प्रस्तावित अर्थ—संभवतः इस पंक्ति में आई 'दिस्सइ न दिसि' शब्दावली से डा० गुप्त ने 'टामंक' का अर्थ 'धुंधलाहट' होने का अनुमान लगा लिया और यों अर्थ कर दिया—'ऐसी टामंक (धुंधलाहट) हुई कि दिशाएँ न दिखती थीं।' परंतु दिशाएँ न दिखने का कारण अश्वारोही सेना का जमाव है।

वस्तुतः टामंक प्राचीन राजस्थानी का एक बहुव्यवहृत शब्द है जिसका अर्थ है नगाड़ों या युद्धवाद्यों का घोष। इसके प्रचुर उदाहरण दिए जा सकते हैं। यथा —

(१) धुर टामंक सं घोर घण, थिर नर थर सल्ला।[1]

(२) दादुर मोर टबक्क घण, बीजलड़ी तरवारि।

—ढोला मारू रा दूहा

(३) टमंकि तबल्ल नफेरिय टीप।
झूंमाऊ त्रंबक वाज सजीप॥ —राजरूपक, पृष्ठ २०३

यही नहीं स्वयं कवि चंद ने भी इसका इसी अर्थ में अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ श्री मोतीलाल मेनारिया द्वारा संपादित 'डिंगल में वीररस' नामक पुस्तक में चंद विरचित रासो के दिए गए 'घग्घर नदी का युद्ध' शीर्षक उद्धरण से भी इसी अर्थ की पुष्टि होती है—

१. 'माताजी री वचनिका', पृष्ठ ७२; 'परंपरा', जोधपुर।

बंबेव फौज लोहान बर, हुहूँ फौज टामंक किय ॥५०॥

—डिंगल में वीर रस पृष्ठ ८३

पंक्ति के उत्तरार्द्ध का संपादकीय अर्थ है—'दोनों सेनाओं ने नगाड़े बजवाए।'

अतः डा० गुप्त का अर्थ 'घुंघलाहट' भ्रांत है।

२१. तन तुरंग तिलु ति तिलु कर भयउ कन्ह मन भिष्य।

—पृष्ठ २२७, पद्य १८, पंक्ति १

डा० गुप्त ने इस पंक्ति में आए 'भिष्य' शब्द की संभावित व्युत्पत्ति 'भिक्षा' (आकांक्षा) से मानते हुए अर्थ किया है—'अपने शरीर और तुरंग (घोड़े) को [कटाकर] तिल तिल करने के लिये कन्ह के मन भिक्षा, आकांक्षा (?) हुई।'

प्रस्तावित अर्थ—'भिष्य' शब्द का आशय वही है जो गुप्तजी ने बताया है अर्थात् आकांक्षा, इच्छा। परंतु उसका मूल 'भिक्षा>भीख' न मानकर 'बुभुक्षा>भूख' मानना क्या अधिक संगत न होगा? अर्थात् 'तिल तिल कट मरने की कन्ह के मन में भूख हुई।' भिष्य<भूख<बुभुक्षा = आकांक्षा; तीव्र इच्छा)। 'भिक्षा' शब्द की अपेक्षा 'भूख' आकांक्षा के अर्थ के अधिक निकट है। 'भिक्षा' से आकांक्षा के अर्थ की कोई व्यंजना नहीं होती।

२२. तब सु भई परतक्खि अरीत अरीत कहत कह।

—पृष्ठ २३०, पद्य २४, पंक्ति ४

(प्रसंग—अल्हन के मस्तक के धराशायी होते समय उसके स्मरण करने पर महामाया (दुर्गा) प्रकट हुई। उधर उसी समय अप्सरा भी 'अरीत अरीत' कहती हुई साकार हुई एवं उसने अल्हन को अपनी गोद में भर लिया।)

डा० गुप्त ने 'अरीत अरीत' का अर्थ 'अरिक्त अरिक्त' [अर्थात् अब अल्हन के आगमन से स्वर्ग की रिक्तता शेष नहीं रही]'—ऐसा किया है।

प्रस्तावित अर्थ—हमारे विचार से यहाँ 'अरीत' का अर्थ 'अरिक्त' न होकर 'अरीति' (अर्थात् अनुचित या रीतिविरुद्ध बात) है। भाव यह है कि कवि मान्यतानुसार युद्ध में वीरगति प्राप्त करनेवाले योद्धा का वरण करने के हेतु स्वर्ग में अप्सराएं आकुल रहती हैं। वे अहमहमिका से उसके गले में वरमाला डालती हैं। ऐसे वीरगति प्राप्त योद्धा पर वे एक प्रकार से अपना अधिकार समझती हैं। यहाँ जब अल्हन का शिर निपतित हुआ तो उसके स्मरण करने से महामाया (देवी) हर्षसूचक हुंकार करती हुई प्रकट हुई। देवी के इस आकस्मिक आविर्भाव से अप्सरा को संदेह हुआ कि कहीं वह अल्हन के मस्तक

को, जो उसका प्राप्य है, अपनी मुंडमाला के लिये न ले ले। अतः वह देवी को 'अरीति अरीति' (यह रीति विरुद्ध है, यह रीति विरुद्ध है) कह कर निषेध करती हुई अमृतकलश सहित प्रकट हुई एवं उस वीर को स्वयं वरण करने के हेतु अपने क्रोड़ में भर लिया।

उपर्युक्त भावसंदर्भ में 'अरीति' का अर्थ 'रीतिविरुद्ध' ही संगत प्रतीत होता है जिसके पीछे वीरोत्सर्ग के प्रेरक मध्ययुगीन विश्वास की एक उदात्त परंपरा है। युद्ध में धराशायी होते ही वीर का अप्सराएं कितनी तत्परता से वरण करती हैं, इस भाव का यह अन्य दूहा देखिए—

कंत कहंता सहगमण कीधां रहवौ साथ।
छोड़ो अच्छर छेहड़ो, सो धण झालै हाथ॥

—वीर सतसई, पृष्ठ ३७

२३. सेस सीसु कंपियउ दाढ डुल्लिय भुवि भारह।

—पृष्ठ २३८, पद्य २४, पंक्ति ४

डा॰ गुप्त ने इस पक्ति का अर्थ यों किया है—'शेष का शिर काँप गया और उनकी डाढ़ भूमि के भार से डोल गई।'

प्रस्तावित अर्थ—इस पंक्ति में आए 'दाढ डुल्लिय' का डा॰ गुप्त ने शेष से संबंध मानकर अर्थ किया है जैसाकि उनके द्वारा शेषनाग के लिये प्रयुक्त सर्वनाम 'उनकी' से प्रकट है। परंतु, 'दाढ डुल्लिय' वस्तुतः वाराह के लिये आया है जिनकी डाढ पर भी पौराणिक मतानुसार पृथ्वी की अवस्थिति मानी गई है। यहाँ यद्यपि संज्ञा (वाराह) लुप्त है तथापि क्रिया स्पष्टतः उसी का वाचकत्व करती है। अतः इस पक्ति का अर्थ यों होना चाहिए—'शेष का शिर काँप गया एवं [वाराह की] डाढ भूमि के भार से डोल गई।' पृथ्वी शेष के फन और वाराह की डाढ़ पर स्थित मानी गई है। अतः यहाँ 'शेष की डाढ़ डोल गई'—ऐसा अर्थ अयुक्त है।

इस प्रकार का वर्णन कवि-परंपरा पुष्ट भी है। उदाहरणार्थ धनुभंग के प्रसंग में महाकवि तुलसी ने भी ऐसा ही वर्णन किया है—

'चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले।'

—रामचरितमानस

२४. इह विधि विलसि विलास असार सुमार किय।

पृष्ठ २४५, पद्य ८, पंक्ति १

गुप्तजी का अर्थ है—'इस प्रकार विलासों को विलस कर [पृथ्वीराज ने] सुमार (सामर्थ्य-शक्ति) को भी असार कर दिया।'

प्रस्तावित अर्थ - डा० गुप्त का उक्त अर्थ हमें निराधार प्रतीत होता है। होना यों चाहिए—'इस प्रकार विलासों को विलस कर [पृथ्वीराज ने] इस असार (संसार) को भी सुसार (सारयुक्त) कर दिया।' अर्थात् नाना भोग-विलासों का यथेच्छ उपभोग कर उसने मानों इस सांसारिक असारता में भी अपने अस्तित्व की सार्थकता का अनुभव कर लिया। अर्थात् अनेक ऐश्वर्यों का उपभोग कर अपने जीवन को सफल, सारयुक्त या सुखद बना लिया।

डा० गुप्त के अर्थ 'सुसार को भी असार कर दिया' से कोई भाव स्पष्ट नहीं होता। यहाँ प्रसंग पृथ्वीराज के विलास का है, शौर्यवर्णन का नहीं। अतः 'सामर्थ्य-शक्ति को असार कर देने' का अर्थ भ्रांत है।

२५. तमचूरन जूरण किरणि त प्रगटि दिसांन दिसांन।

—पृष्ठ ३०५, पद्य १८, पंक्ति २

(प्रसंग—प्रभात का वर्णन है) डा० गुप्त का अर्थ है—'ताम्रचूड़ों को कष्ट देनेवाली [सूर्य की] किरणें दिशाओं में प्रकट हुई।'

प्रस्तावित अर्थ—डा० गुप्त का अर्थ असंगत है। प्रातःकालीन सूर्य की किरणें ताम्रचूड़ों को कष्ट देनेवाली होती हैं, यह एक नई बात है क्योंकि अब तक तो प्रभातवर्णन के प्रसंग में हमने ताम्रचूड़ों की उल्लसित कंठध्वनि के ही वर्णन पढ़े हैं। महाकवि सूर ने जो यह लिखा है—

आज भोर तमचुर की रोल।
गोकुल में आनंद होत है, मंगल धुनि महराने टोल।

क्या यह अस्वाभाविक है? और भी अनेकानेक कवियों ने प्रभातवर्णन के प्रसंग में ताम्रचूड़ों की सुखद शब्दध्वनि का जो चित्रण किया है क्या वह यथातथ्य नहीं?

हमारे विचार से इस पंक्ति के दो अर्थ संभव हैं—

तम (अंधकार) को चूर्ण और त्रस्त (जूरण) करने वाली (सूर्य की) किरणें दिशि दिशि में प्रकट हो गई।

अथवा

[प्रभात के लिये] झुरते हुए (आकुल) ताम्रचूड़ों को [हर्षित करने वाली] [सूर्य की] किरणें दिशि दिशि में प्रकट हुई।

परंतु सूर्यकिरणों से ताम्रचूड़ों के कष्ट पाने का अर्थ तो असंगत ही लगता है।

२६. मइं दियउ दान चिंता न करि जा होइ चंदु सदइ निरति ।
—पृष्ठ ३२२, पद्य ४२, पंक्ति ५

डा० गुप्त ने इस पंक्ति में प्रयुक्त 'निरति' का अर्थ 'मग्नता, तल्लीनता' किया है।

प्रस्तावित अर्थ—डा० गुप्त द्वारा गृहीत अर्थ यद्यपि संगत है, तथापि प्राचीन राजस्थानी साहित्य में 'निरति' शब्द एक विशिष्टार्थ में प्रयुक्त हुआ है जो संतसाहित्य में व्यवहृत 'सुरति और निरति' के अर्थ से भी भिन्न है। वह विशिष्टार्थ है—खबर, सुध या सूचना। उदाहरणार्थ—

(१) भद्रक जीव भोलउ घणुं निरति नहीं नर-नारि।—
—समयसुंदर, वल्कल चीरी चौपई

(२) आयो नहीं सुत एथि, निरति करउ सब नगर मई।
—समयसुंदर, पुन्यसार चरित्र चौपई

(३) राजा, कउ अण पाठवइ, ढोलउ निरति न होइ।
—ढोलामारू रा दूहा

इस दृष्टि से उपर्युक्त पंक्ति में प्रयुक्त 'निरति' शब्द का अर्थ सूचना मानते हुए यों भी अर्थ किया जा सकता है—

"मैंने [तेरी ओर से बिना तेरे कहे ही वचन का] दान दे दिया है, तू चिंता न कर, चंद के शब्दों (कथन) से तुझे यह सूचित हो जाए।"

यहाँ केवल सरसरी दृष्टि से ग्रंथ के अवलोकन के अनंतर कुछ शब्दार्थों के संबंध में उत्पन्न अपने विचारों को मैंने विद्वज्जनों के समक्ष निवेदन किया है। सच तो यह है कि डा० माताप्रसाद गुप्त के उक्त ग्रंथ ने रासो के पाठालोचन तथा तत्संबद्ध समस्याओं को सुलझाने की अपेक्षा कहीं कहीं और अधिक उलझा दिया है। पाठालोचन वैज्ञानिक होकर भी अंतिम रूप से निर्विवाद नहीं हो सका है। डा० गुप्त द्वारा संपादित 'रासउ' को पढ़कर पाठक की यह धारणा बने बिना नहीं रहती। तथापि यह शिकायत तो थोड़ी बहुत सभी ग्रंथों के साथ बनी रहती है एवं प्रस्तुत ग्रंथ का महत्त्व इससे कुछ कम नहीं होता, जो अपने आप में एक स्तुत्य एवं अभिनंदनीय प्रयास है।

❀

महाकवि भूषण का कालनिर्णय

[काशीनाथ केलकर]

महाकवि भूषण की प्राप्त सभी रचनाएँ हिंदी में मिलती हैं। अतः हिंदी साहित्य के विद्वानों ने इनका अध्ययन किया। क्योंकि महाराष्ट्र के ललाम छत्रपति शिवाजी की स्तुति में कवि भूषण ने काव्यरचना की इस लिये महाराष्ट्र के इतिहास-वेत्ता साहित्यप्रेमियों के अध्ययन का वह एक विषय है।

रीतिकालीन शृंगार-रस-प्रधान काव्यरचना से पृथक ओजपूर्ण वीररस की 'अलंकारवादी' काव्यरचना भूषण की महत्ता सिद्ध करने में पर्याप्त है। दुर्भाग्यवश भूषण का असली नाम, जन्मकाल, रचनाकाल, जीवनचरित्र, मृत्यु इत्यादि के संबंध में प्रामाणिक आधारों के अभाव में किंवदंतियाँ प्रसारित हुईं और साहित्य उन्हें ही प्रामाणिक मानने लगा है।

प्रस्तुत निबंध का उद्देश्य भूषण और उनकी रचना—शिवराजभूषण—के कालनिर्णय का विवेचन करना है। इसके लिये प्राप्त प्रकाशित ग्रंथों का ही आधार लिया गया है।

भूषण के असली नाम का उल्लेख उनकी किसी भी प्राप्त रचना में अप्राप्त है अतः उसके लिये अनुमान ही किए गए हैं। प्रमुख अनुमान ये हैं—

(क) श्री महेंद्रपाल सिंह के कथनानुसार भूषण का असली नाम पतिराम था।[1]

(ख) श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित का मत है कि भूषण का नाम मनिराम था।[2]

(ग) श्री दीक्षित ने अन्य एक स्थान पर लिखा है कि भूषण का असली नाम कनौज था।[3]

१. विशाल भारत, अगस्त १९३० ई०।
२. महाकवि भूषण—भगीरथप्रसाद दीक्षित (द्वि० सं० १९९६) पृ० ३३।
३. वही, पृ० ३२।

(घ) कैप्टेन शूरवीर सिंह पवार 'अलंकारप्रकाश' के आधार पर बताते हैं कि भूषण का असली नाम 'मुरलीधर' था।[४] किंतु अलंकारप्रकाश के रचयिता 'मुरलीधर कवि भूषण' तथा 'शिवराजभूषण' के रचयिता कवि भूषण की रचनाओं का अध्ययन करके विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि ये दोनों कवि विभिन्न हैं।

(ङ) श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र के कथनानुसार 'भूषण का असली नाम घनश्याम था'।[५]

उपर्युक्त कथनों का निष्कर्ष इतना ही निकलता है—'इनका (भूषण का) असल नाम क्या था इसका पता नहीं।'[६]

कवि भूषण के बारे में दूसरा विवाद्य प्रश्न भूषण के भाई और उनके नाम के संबंध में है। अधिकतर विद्वान मानते हैं कि भूषण के और तीन भाई थे। इनके नाम चिंतामणि, मतिराम और जटाशंकर थे। जटाशंकर विशेष प्रसिद्ध नहीं थे अतः भूषण के साथ अन्य दो भाइयों के ही नाम लिए जाते हैं। हिंदी के अनेक ग्रंथों में अनेकानेक विद्वानों ने इस मत को स्वीकार किया है कि चिंतामणि, भूषण और मतिराम सहोदर भाई थे। चिंतामणि और भूषण के सहोदर बंधु होने में किसी प्रकार की मतभिन्नता नहीं, किंतु भूषण और मतिराम के सहोदर भाई होने में मतैक्य नहीं है। भूषण और मतिराम सहोदर भाई नहीं थे, इस मत का प्रतिपादन करते समय भूषण और मतिराम द्वारा दिए गए वंशपरिचय का आधार लिया जाता है।

भूषण का वंश परिचय—

द्विज कनौज कुल कश्यपी रतनाकर सुत धीर।
बसत त्रिविक्रमपुर नगर तरनि तनूजा तीर॥[७]

मतिराम—

तिरपाठी बनपुर बसैं, वत्सगोत्र मुनि गेह।
बिबुध चक्रमणि पुत्र तंह गिरिधर गिरिधर देह॥
...तिनके तनय उदार मति विश्वनाथ हुअ नाम।
...तासु पुत्र मतिराम कवि निज मति के अनुसार॥[?]

४. अलंकारप्रकाश—शूरवीरसिंह पवार, प्रस्तावना, पृ० २।
५. भूषण—विश्वनाथप्रसाद मिश्र (प्र० सं०, संवत् २०१०), पृ० १०३।
६. हिंदी साहित्य का इतिहास (नवम संस्करण), पृ० २५४।
७. महाकवि भूषण पृ० ३४।

इससे स्पष्ट है कि दोनों के गोत्र भिन्न थे और पिता के नाम भी भिन्न थे। अतः ये दोनों सहोदर भाई नहीं थे। डा० भगीरथ मिश्र ने 'मतिराम नामधारी दो कवि' नाम के अपने एक लेख में चर्चा करते हुए कतिपय आधारों से यह सिद्ध किया है कि मतिराम नाम के दो भिन्न कवि थे और उनमें से एक भूषण का सहोदर भाई था।[८] इससे यह स्पष्ट होता है कि चिंतामणि, भूषण, मतिराम और जटाशंकर ये चारों सहोदर भाई थे।

भूषण की निम्नलिखित रचनाएँ मानी जाती है — १ – शिवराजभूषण, २ – शिवाबावनी, ३ – छत्रसालदशक, ४ – फुटकर रचनाएँ, ५ – भूषण उल्लास, ६ – दूषण उल्लास और ७ – भूषणहजारा। इन रचनाओं में प्रथम चार प्राप्त और प्रकाशित हैं और अंतिम तीन अप्राप्त हैं।

प्रस्तुत निबंध का मुख्य विषय 'कवि भूषण छत्रपति शिवाजी के समकालीन थे' हिंदी साहित्य में एक विवादास्पद विषय बना हुआ है। जब तक विश्वसनीय आधार उपलब्ध नहीं होता तब तक आजतक के प्रकाशित ग्रंथों के आधारों पर ही अवलंबित रहकर निष्कर्ष निकालना पड़ता है।

कवि भूषण शिवाजी के समकालीन नहीं थे, ऐसा मत प्रतिपादन करनेवालों में श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित मुख्य हैं। श्री दीक्षित ने 'भूषण और मतिराम' लेख तथा 'भूषण विमर्ष' और 'महाकवि भूषण' नामक ग्रंथो में अपना निम्नलिखित मत स्पष्ट किया है —'महाकवि भूषण शिवाजी के दरबार में कदापि नहीं थे। उनका जन्म शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् ही हुआ था। भूषण ने सितारा में राजा साहू के दरबार में रहकर शिवराजभूषण की रचना की।'

श्री दीक्षित के मत का प्रधान आधार 'शिवसिंह सरोज'[९] ग्रंथ है। इस ग्रंथ में भूषण के विषय में लिखा है—'भूषण त्रिपाठी टिकमापुर जिले कानपुर सं० १७३८'। ··· ये महाराज प्रथम राजा छत्रशाल परना नरेश के इहाँ छः महिने तक रहे तेहि पीछे महाराज शिवराज सुलंकी सितारागढ़वाले के इहाँ जाय बड़ा मान पाया और जब यह कवित्त 'इंद्र जिमि जंभ पर' भूषण ने पढ़ा तब शिवराज ने पाँच हाथी और २५ हजार रुपया इनाम दिया इसी प्रकार से भूषण ने बहुत रुपया हाथी घोड़ा पालकी इत्यादि दान में पाये।'[१०]

८. मतिराम नामधारी दो कवि—डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ४।

९. शिवसिंह सरोज—शिवसिंह सेंगर, संवत १९३४।

१०. वही, पृ० ४६७।

उपर्युक्त ग्रंथ और उनके कथन के आधार पर श्री दीक्षित कवि भूषण का जन्मसंवत् १७३८ (सन् १६८१) मानते हैं। श्री दीक्षित के आधारभूत ग्रंथ तथा उनके मत के संबंध में विवेचन आवश्यक है। 'शिवसिंह सरोज' ग्रंथ का रचनाकाल संवत् १९३४ (सन् १८७७) है। ग्रंथ के लेखक का कथन ध्यान देने योग्य है। ग्रंथ की भूमिका में लिखा गया है — 'जिन कवि लोगों के ग्रंथ हमने पाये हैं उनके सन् संवत बहुत ठीक ठीक लिखे हैं और जिनके ग्रंथ नहीं मिले उनके सन् संवत् हमने अटकर से लिख दिये हैं।'[11] लेखक ने अन्यत्र लिखा है — 'इनके (भूषण के) बनाये हुए ग्रंथ शिवराज भूषण १ भूषण हजारा २ भूषण उल्लास ३ दूषण उल्लास ४ ये चार ग्रंथ सुने जाते हैं।'[12] उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि 'शिवसिंह सरोज' के रचनाकाल संवत् १९३४ तक शिवराजभूषण ग्रंथ लेखक को नहीं मिला था। किंतु इस एक ग्रंथ में ही कवि भूषण ने अपने ग्रंथ का रचनाकाल प्रसिद्ध किया है। फिर शिवसिंह सेंगरजी ने किस आधार पर भूषण का जन्मकाल संवत् १७३८ लिखा है। निश्चय ही यह अंदाज या अटकर है। इतिहास अंदाज को स्वीकार नहीं कर सकता अतः शिवसिंहसरोज में लिखित भूषण का जन्मकाल प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

श्री दीक्षित जी के मत का दूसरा आधार 'शिवराज भूषण' का छंद ३८० है—

सम सत्रह सै तीस पर सुचि वदि तेरसि भान।
भूषण सिव भूषण कियो पढ़ियो सकल सुजान॥

उपर्युक्त दोहे में सत्रह सौ तीस पर' और 'भूषण सिव भूषण कियो' इन शब्द समूहों का अर्थ और श्लेषार्थ श्री दीक्षित जी ने इस प्रकार बताया है—

(अ) 'सत्रह सै तीस पर' में आप 'पर' शब्द का अर्थ अनंतर या पश्चात् लिया, 'तीस' शब्द में 'सं' को जोड़कर सैतीस बनाया और इस प्रकार 'सत्रह सै तीस पर' का अर्थ संवत् १७३७ के पश्चात् सं० १७३८ लिया। इसी विवेचन के प्रसंग मे 'भूषण सिव भूषण कियो' का अर्थ यों किया है - देवताओं के भूषण शिवजी ने भूषण को उत्पन्न किया।

(ब) दूसरी बार 'सत्रह सै तीस पर' में स्थित 'पर' का अर्थ 'उलटा' लिया अर्थात् ३७ का उलटा ७३ लेकर 'सत्रह सैतीस पर' का अर्थ १७७३ स्वीकार

११. वही, भूमिका, पृ० २।
१२. वही, पृ० ४६८।

किया। इसी संदर्भ में 'भूषण शिव भूषण कियो' का अर्थ 'भूषण ने शिवराज-भूषण की रचना की' लिया है। इस प्रतिपादन के अनुसार यहाँ सिद्ध किया— संवत् १७३८ में भूषण का जन्म हुआ और संवत् १७७१ में भूषण ने शिवराज-भूषण की रचना की।

इस प्रतिपादन से निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित होते हैं। १ – यदि 'पर' का अर्थ पश्चात् है तो एक ही साल पश्चात् लेने का क्या कारण हो सकता है? २ – शिवजी का उल्लेख निर्माता, उत्पन्न करनेवाले के रूप में नहीं मिलता; संहार-कर्ता के रूप में ही उनका उल्लेख किया गया है। ३ – यदि 'पर' का अर्थ उलटा है तो सिर्फ ३७ का उलटा ७३ ही क्यों लिया गया; पूर्ण अंक का उलटा १७३७ = ७३७१ क्यों नहीं। वास्तविक रीति से 'अंकानाम् वामतो गतिः' नियम प्रचलित है। फिर श्री दीक्षित जी ने अधूरा नियम क्यों अपनाया? ऐसा लगता है कि 'भूषण शिवकालीन नहीं थे' इस मत को सिद्धांत बनाकर उसी की तुष्टि करने के लिये श्री दीक्षित जी ने उपर्युक्त दोहे से अर्थ, श्लेषार्थ और अर्थांतर निकाला है।

श्री दीक्षित ने अपनी इस १९६३ की पुस्तक में जिस दोहे को प्रामाणिक माना है उसी दोहे के संबंध में उनका एक आश्चर्यकारी कथन द्रष्टव्य है। 'मतिराम और भूषण' शीर्षक लेख में आपने लिखा है — 'उपर्युक्त कविता इतनी निकृष्ट श्रेणी की है कि जिसे साहित्य का कुछ भी ज्ञान है वह तुरंत कह देगा कि यह कविता कदापि महाकवि भूषण की रची नहीं है'' यह कविता किसी ने पीछे से मिला दी है।'[१३] श्री दीक्षित अपनी इसी १९६३ की पुस्तक में इसी दोहे को प्रामाणिक मानते हैं। न जाने क्यों साहित्यिक अज्ञता का अपना ही अभियोग स्वीकार कर वे इस दोहे को प्रमाणिक मानने लगे।

शिवसिंहसरोज का आधार देते समय 'शिवराज' नाम का दुबारा किया हुआ उल्लेख दीक्षित जी ने कुशलता से टाल दिया है ताकि अपने ही आधार से अपना खंडन न हो।

इन बातों से स्पष्ट है कि भूषण को शिवकालीन न माननेवाले स्व० शिवसिंह सेंगर तथा श्री दीक्षित के प्रमाण आधारहीन से लक्षित होते हैं।

दूसरा पक्ष भूषण को शिवकालीन मानता है। इस पक्ष का समर्थन करने-वाले अनेक विद्वान हैं। यहाँ कुछ प्रमुख मतों का उल्लेख करना पर्याप्त होगा—

१३. मतिराम और भूषण, पृ० १५।

(क) 'बंगवासी' शिवाबावनी के आधार पर चिंतामणि का जन्म संवत् १६५७ (ई० १६०१) और कवि भूषण का जन्म संवत् १६७१ (ई० १६७३) प्रतीत होता है।

(ख) भूषणग्रंथावली के संपादक मिश्रबंधुओं का कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'शिवसिंह सरोज में भूषणजी का जन्मकाल संवत् १७३८ विक्रमी लिखा है परंतु यह नितांत अशुद्ध है···शिवसिंह सरोज में सन् संवत का बड़ा गड़बड़ रहता है। शिवसिंह (सेंगरजी) भूषण महाराज का शिवाजी एवं छत्रशाल के दरबारों में रहना मानते हैं पर शिवाजी (ई० सन् १६८०) संवत् १७३७ में गोलोकवासी हुए थे सो क्या भूषण जी अपने जन्म के डेढ़ साल पहले ही शिवाजी के यहाँ पहुँच गए ?'[१४]

हिंदी के ख्यातनाम विद्वान् तथा आलोचक कवि भूषण को शिवाजी का समकालीन मानते हैं और उनका मत स्वीकार करने मे कोई संदेह नहीं प्रतीत होता।

एक अन्य महत्वपूर्ण आधार का विवेचन यहाँ किया जाना जरूरी है। वह आधार अंतःसाक्ष्य का है। इसके अंतर्गत कवि भूषण का आत्म उल्लेख, भाषागत आधार तथा ऐतिहासिक प्रसंग और घटनाएँ हैं।

(अ) व्यक्तिगत आधार

(क) देसन देसन ते गुनी आवत जाचन ताहि।
तिनमें आयो एक कवि भूषन कहियतु जाहि॥[१५]

देश विदेश से याचना करने के लिये गुणीजन आते हैं उनमें भूषण नाम का एक कवि भी आया। राजा शिवाजी के दरबार में स्वयं उपस्थित रहने का स्पष्ट उल्लेख भूषण ने किया है। यदि भूषण परवर्ती कालीन था तो इस प्रकार झूठी बात लिखने का इस महाकवि का क्या उद्देश्य हो सकता है।

(ख) पीरी पीरी हुन्ने तुम देत हो मँगाय हमें।
सुवरन हम सों परखि करि लेत हो॥[१६]

इनमें 'प्रयुक्त मँगाय हमें', 'हम सों परखि' शब्द अन्य कविजनों के साथ

१४. भूषण ग्रंथावलि—मिश्रबंधु, पृ० ७।
१५. संपूर्ण भूषण—रा० गो० काटे, ई० १९३०, शिवराजभूषण, छंद २५।
१६. वही, छंद १७५।

भूषण का उपस्थित होना सूचित करते हैं। निश्चय ही भूषण का राजा शिवाजी से साक्षात्कार हुआ और यह भूषण का प्रत्यक्ष कथन है।

(ग) एक स्थान पर कवि भूषण ने अपना व्यक्तिगत दुःख प्रकट किया है—

और बाभनन देखि करत सुदामा सुधि,
मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ॥[१७]

अन्य ब्राह्मणों को देखकर सुदामा की याद करते हो (प्रसन्न होते हो) और मुझे देखकर भृगु ऋषि की याद क्यों आती है (अप्रसन्न क्यों होते हो)।

दोहे में शिवाजी की नाराजगी का उल्लेख है। क्या शिवाजी की नाराजगी उनकी मृत्यु के पश्चात् संभव है?

(घ) शिवराजभूषण का अंतिम दोहा इस प्रकार है—

पुहुमि पानि रवि ससि पवन, जब लौं रहै अकास।
सिवसरजा तब लौं जियो भूषण सुजस प्रकास॥[१८]

इसमें स्वस्तिकामना करते हुए स्पष्ट रूप से कहा गया है—सिवसरजा तब लौं जियौ अर्थात् सिवसरजा जीवित रहे, उनकी कीर्ति नहीं। अतः निश्चय ही यह दोहा शिवाजी के जीवनकाल में ही लिखा गया होगा।

(आ) भाषागत आधार

(प) छत्रपति शिवाजी के सामने उपस्थित होकर उनको संबोधन करके 'सिवराज' शब्द का प्रयोग शिवराजभूषण के अनेक छंदों में मिलता है। उदाहरणार्थ दोहा ७२, १०४, १७३, १६३, १६५ इत्यादि।

(फ) शिवाजी के समक्ष उपस्थित होकर उनके साथ मानो संभाषण करते हुए मध्यम पुरुष के सर्वनामों का प्रयोग—

तू (१७६, १८४); तव (४७, ६५); तुम (७४, १७५); तुव (६१, ७३) इत्यादि। इस प्रकार के उदाहरण और भी दिए जा सकते हैं।

यह मध्यम पुरुष के सर्वनामों का प्रयोग सर्वत्र नहीं तथा अन्य पुरुष के सर्वनामों का प्रयोग अनेक स्थानों पर मिलता है। अतः यह अनुमान लगाना

१७. वही, छंद ७५।
१८. वही, छंद ३८२।

अयोग्य न होगा कि जिन दोहों में शिवाजी के लिये मध्यम पुरुष के सर्वनामों का प्रयोग है वे दोहे शिवाजी की उपस्थिति में रचे या सुनाए गए होंगे और अन्य उनकी अनुपस्थिति में।

(ब) कुछ प्रसंगों का वर्णन करते समय वर्तमानकाल की क्रियाओं का प्रयोग मिलता है। जैसे, कहत, लंघै, छुटै, मलति है, दलति है, आइयतु है इत्यादि। इनके अलावा अवश्य ही कुछ अन्य कथन ध्यान देने योग्य हैं जैसे—

(भ) बचैगा न समुहाने बहलोल खां अयाने भूषण बखाने॥[१९]

बहलोल खाँ तुम शिवाजी के सामने न बचोगे।

(म) या पूना में मति टिकौ खानबहादुर आय।
ह्यांई साइसखान को दीन्हीं सिवा सजाय॥[२०]

खानबहादुर तुम पूना में आकर न रहो।

(भ) और (म) में घटनाओं के घटने के पूर्व के ये कथन क्या दर्शाते हैं? यह स्पष्ट रूप से लक्षित होता है कि ये दोहे उन घटनाओं के पूर्व ही रचे गए हैं।

(य) शिवाजी और औरंगजेब के संबंध में वर्णित एक कथन उल्लेखनीय है—

भूषण भनत डावरे को बुद्धि ह्वै कै बावरे न कीजै बैर,
रावरे के बैर होत काज शिवराज के।[२१]

औरंगजेब के सरदार उन्हें सलाह देते हैं--शिवाजी से बैर न कीजिए आपके वैर करने से शिवाजी का ही कार्य सधता है।

शिवाजी से बैर करने का तथा उनका कार्य सधने का शब्दप्रयोग शिवाजी के जीवनकाल में ही शक्य है।

(र) भूषण की रचना में प्रयुक्त कुछ विशेष शब्दों का उल्लेख अवश्य ही अध्ययन करने योग्य है।

आजु – इस कालवाचक क्रियाविशेषण का उल्लेख शिवाजी के तथा कुछ घटनाओं के संबंध में मिलता है।

१९. संपूर्ण भूषण, दो० १६१।
२०. वही, दो० ३३८।
२१. वही, दो० २७६।

आजु तुमही जगतकाज पोषत भरत है।[२२]

ये छंद शिवाजी के काल में ही सामयिक रचना का बोध कराते हैं।

मंगन और रिझाए

मंगन को भुवपाल घने पै निहाल करै सिवराज रिझाएँ।[२३]

इसमें उल्लिखित माँगने की तथा रिझाने की क्रिया व्यक्ति के जीवनकाल में ही हो सकती है।

जीतै—क्यों जीतै सिवराज सों अब अंधक अवरंग।[२४]

अंधकरूपी अवरंग शिवाजी को कैसे जीतेगा? जीतने की क्रिया निश्चय ही व्यक्ति के जीवनकाल में संभव है।

(इ) इनके अलावा कुछ घटनाओं का जिक्र आवश्यक है। भूषण ने अपनी रचना में साल्हेरी किले का तथा उसके युद्ध का उल्लेख दो० ६७, १०१, १०७, १६१, २२६, २२६, ३३१ में किया है तथा परनाला किले और तत्संबंधी घटनाओं का जिक्र १७२, २०७, २५४, ३६७ आदि दोहों में किया है। सर्वत्र यह देखा जाता है कि हाल में घटित महत्वपूर्ण घटना का बड़ा ही प्रभाव मनुष्य के मन पर होता है और उसी घटना का उल्लेख वह बार बार करता है। राजा शिवाजी ने ई० १६७२ में साल्हेरी किला तथा १७७३ में परनाला किला जीत लिया था। अतः इन घटनाओं का प्रभाव भूषण की रचना में मिलता है। इससे यह अनुमान निकालना अनुचित न होगा कि शिवराजभूषण का रचनाकाल इसी समय के लगभग का ही होगा।

(ई) श्री दीक्षित का यह कथन 'कवि भूषण ने शिवराजभूषण की रचना साहू के दरबार मे रहकर की थी' इसलिये और भी अविश्वसनीय है कि भूषण की रचना में शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् की कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण निम्नलिखित घटनाओं का उल्लेख अप्राप्त है—

१. राजा शिवाजी का राज्याभिषेक।
२. राजा संभाजी का पराक्रम तथा औरंगजेब द्वारा उनकी निघृ'ण हत्या।
३. राजाराम की मृत्यु तथा तत्कालीन महाराष्ट्र की स्थिति।
४. दैत्यरूप औरंगजेब की मृत्यु।

२२. वही, दो० ७५। अन्य उदाहरण, दो० ४०, २३४, ३४१, ३४६ आदि।
२३. वही, दो० १४०।
२४. वही, दो० १६४।

उपर्युक्त तथा अन्य कतिपय घटनाओं का अनुल्लेख यह स्पष्ट करता है कि शिवराजभूषण की रचना भूषण ने राजा शिवाजी के जीवनकाल में ही की थी अतः यह स्पष्टरूप से सिद्ध है कि कवि भूषण शिवाजी के समकालीन थे।

शिवराजभूषण की दो घटनाओं का निर्देश कर तथा उन्हें अशुद्ध बतलाकर श्री दीक्षित कहते हैं कि 'यह अशुद्धता बता देती है कि महाकवि भूषण कदापि शिवाजी के दरबार नहीं थे।' घटनाएँ निम्नलिखित हैं—

१. शिवाजी का मिर्जा जयसिंह को ३५ किले देना।
२. औरंगजेब के संबंध में गुसलखाने का उल्लेख।

ये दोनों बातें अशुद्ध नहीं, शुद्ध हैं।

पहली बात का खंडन इस प्रकार किया जाता है कि यह ३५ का अंक कहाँ से आया? शिवाजी और जयसिंह में जो सुलह हुई थी उसमें प्रथम ३५ किले वापस करा देने की शर्त रखी गई थी किंतु वास्तव में २३ किले ही दिए गए थे। अतः यह घटना शुद्ध है।

दूसरी घटना भी शुद्ध है क्योंकि गुसलखाने का अर्थ इतिहासकारों ने खलवतखाना, परामर्शसदन लिया है। हाल में प्रकाशित शिवाजी के आगराप्रयाण से संबंधित पुस्तक में स्पष्ट रूप से लिखा गया है—एंपरर, वाज सिटिंग इन द सेलेक्ट आडियंस हाल (दीवान-ए-खास) पापुलर्ली नोन ऐज गुसलखाना।[२५] क्या ये विशुद्ध घटनाएँ स्थिर करेंगी कि भूषण शिवाजी के समकालीन थे?

'महाकवि भूषण शिवाजी के समकालीन नहीं थे' अपने इस आधारहीन मत का प्रतिपादन करते समय श्रीदीक्षित जी ने अनेक अशुद्ध तथा अनैतिहासिक बातों का जिक्र किया है। उनका खंडन करना नितांत आवश्यक है। स्थानाभाव से कुछ ही बातों का विचार यहाँ किया जा रहा है।

१. 'भूषण की वीररस की रचना से औरंगजेब की सारी शक्ति क्षीण पड़ गई और राष्ट्र में नवजीवन का संचार हुआ।[२६] परंतु श्री दीक्षित उसी पुस्तक में में पृष्ठ ६५ पर लिखते हैं 'शिवराजभूषण कवि ने साहू के दरबार में रहकर

२५. शिवाजीज़ विज़िट टु औरंगजेब ऐट आगरा—इंडियन हिस्टरी कांग्रेस रिसर्च सीरीज नं० १, पृ० २४।

२६. महाकवि भूषण – दीक्षित, पृ० २५।

रचा था।' इतिहास जानता है कि औरंगजेब की मृत्यु ई० १७०७ में हुई और उसके अनंतर ई० १७०८ में राजा साहू सिंहासनासीन हुए। अतः सवाल उठता है कि परवर्ती रचना का परिणाम पूर्ववर्ती व्यक्ति एवं परिस्थिति पर कैसे हो सकता है।

२. 'भूषण ने उत्तरी भारत के नेतृत्व की बागडोर जयपुर नरेश के हाथ में दे दी।'[२७] न जाने यह किस इतिहास का निचोड़ है ? क्या भूषणजी कोई सम्राट् थे जो इस प्रकार की बागडोर जयपुर नरेश के हाथों देते ?

३. 'शिवा बावनी के अनेक छंदों में ऐतिहासिकता का रूप साहू के समय का है परंतु वे शिवाजी की प्रशंसा में लिखे गए हैं।'[२८] क्या महाकवि भूषण इतने अल्पमति थे कि वे साहित्य में देशकाल का महत्व नहीं जानते थे जो उन्होंने परवर्ती शासक के समय की परिस्थिति पूर्ववर्ती राजा के नाम पर लगा दी।

४. महाराजा छत्रसाल, बाजीराव और मस्तानी के विषय में श्री दीक्षित का कथन ध्यान देने योग्य है—'मोहम्मद खाँ बंगस ने पन्ना पर आक्रमण कर दिया। अंत में कोई उपाय चलता न देखकर (महाराज ने) भूषण कवि से सहायता की याचना की। वे तुरंत दक्षिण की ओर चले। पूना पहुँचकर छत्रसाल की ओर से बाजीराव पेशवा से प्रार्थना की ... । युद्ध की समाप्ति पर महाराजा छत्रसाल ने भूषण की सलाह से अपनी कन्या मस्तानी का विवाह बाजीराव पेशवा से कर दिया और अपना एक तिहाई राज्य दहेज में दिया।'[२९] श्रीदीक्षित को न जाने यह आधार कहाँ मिला। अवश्य ही श्री दीक्षित के इस कथन से पेशवा बाजीराव तथा महाराज छत्रसाल का चरित्र विकृत हुआ है।

५. छत्रपति साहू को अपनी मृत्यु के पूर्व ही औरंगजेब ने मुक्त कर दिया था अतः वह धूमधाम से संवत् १७३५ (ई० १७०८) में सिंहासनासीन हुए।'[३०] इतिहासकार जानते हैं कि औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र बहादुरशाह ने उत्तर की ओर प्रयाण करते समय साहू को मुक्त किया था।[३१]

२७. वही, पृ० ४७।
२८. वही, पृ० ७३।
२९. वही, पृ० ७६, ५७, ५८।
३०. वही, पृ० ५९।
३१. कैंब्रिज हिस्टरी, भा० ४, पृ० ३१२।

६. 'उत्तर भारत में १८-२० वर्ष लगातार कैद रहने से साहूजी हिंदी भाषा से भली भाँति परिचित थे।'[३२] राजा साहू कभी भी उत्तरभारत में नहीं वरन् औरंगजेब की छावनी, दक्षिण में ही कैद रहे।[३३]

७. 'भूषण ने सितारा जाते हुए गोलकुंडा और बीजापुर के शीआ राजकुमारों से भेंट की थी और उन्हें अपने संघटन में संमिलित कर लिया था।'[३४] इतिहास के अनुसार औरंगजेब ने ई० १६८६ में बीजापुर और ई० १६८७ में गोलकुंडा के राज्य नष्ट किए थे।[३५] उनके २०-२२ साल बाद भूषण ने न जाने कहाँ से इन राज्यों के शाहजादों को खोज निकाला और न जाने उन्हें कौन से संघटन में संमिलित कराया।

८. 'बाजीराव पेशवा ने दिल्ली का आमखास जला डाला था। परंतु इसे भी भूषण ने शिवाजी के नाम पर कथन किया है।'[३६] इतिहास के अनुसार दिल्ली का आमखास न बाजीराव ने जला डाला था न शिवाजी ने। भूषण का ऐसा कथन भी लक्षित नहीं होता। यहाँ पर भी काल-घटना-क्रम के संबंध में अज्ञता है। किंतु पता नहीं यह अज्ञता किसकी है।

९. 'बिदनूर राज्य कोकण के दक्षिणी भाग में अवस्थित है इसे कर्नाटक प्रांत में मानना सरासर भूल है।'[३७] बिदनूर १४° उत्तर और ७५° रेखावृत्त पर अवस्थित है। वह कोकण के दक्षिण में गोवा राज्य के दक्षिण में है। बिदनूर कर्नाटक में ही था और आज भी है। उसे महाराष्ट्र में मानना ही सरासर भूल है।

१०. 'शिवाजी के सेनापति हमीरराव (हबीरराव मोहिते) ने ई० १६७४ में नर्मदापार की ओर भड़ोच में घुस गए... यह घटना भी १७३० के पीछे की है।'[३८]

इतिहास से स्पष्ट होता है कि हमीरराव १० दिसंबर १६८५ ई० को मारे

३२. महाकवि भूषण, पृ० ५२।
३३. केंब्रिज हिस्टरी, भा०, ४ पृ० ३१२।
३४. महाकवि भूषण, पृ० ५१।
३५. मुसलमानी रियासत — सरदेसाई, पृ० ७४२।
३६. महाकवि भूषण, पृ० ८७।
३७. वही, पृ० ९९।
३८. वही, १०१।

गए।[३३] अतः उसके पश्चात उनका जीवित रहकर या होकर भड़ोच पर आक्रमण करना संपूर्णतया अनैतिहासिक है।

महाकवि भूषण शिवाजी के समकालीन नहीं थे, इस मत का प्रतिपादन करते समय श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित ने इतिहास का जो विकृत और आधारहीन चित्रांकन किया है तथा साहित्य तथा इतिहास की अनेक घटनाओं का जो काल्पनिक प्रतिपादन किया है उसे साहित्य तथा इतिहास के विद्वानों के संमुख उपस्थित करना ही यहाँ अभीष्ट है।



३३. छत्रपति संभाजी—बेंद्रे, पृ० १३१।

'भरतविलाप' का रचयिता

[सियाराम तिवारी]

'भरतविलाप' के रचयिता के रूप में तीन नाम मिलते हैं—तुलसीदास, ईश्वरदास और सूरजदास। अद्योपलब्ध एकाधिक दर्जन प्रतियों में से सूरजदास का नाम केवल दो ही प्रतियों में है। श्री उदयशंकर शास्त्री[1] और प्रयाग संग्रहालय[2] की प्रतियों में सूरजदास का नाम है, यद्यपि प्रयाग संग्रहालय की प्रति में सूरजदास के साथ तुलसीदास नाम भी आया है।[3] और जिस रूप में यह नाम आया है उससे तो इसके रचयिता तुलसीदास ठहरते हैं, न कि सूरजदास। कारण, भणिता रूप में तुलसीदास का नाम है, सूरजदास तो पुस्तक तयार हो जाने पर उसे ले जानेवाले हैं। शास्त्री जी की प्रति में अवश्य ही सूरजदास का नाम स्पष्टतः उल्लिखित है।[4] अतः उन्होंने यह प्रस्तावना रखी है कि 'भरतविलाप' सूरजदास की रचना है, ईश्वरदास की नहीं। उनकी मान्यता का आधार केवल यह है कि उन्हें जो प्रति मिली है, वह सूरजदास के 'रामजन्म' के साथ लिखित है और दोनों के ग्रंथकर्ता का नाम सूरजदास दिया हुआ है। किंतु सूरजदास का नाम यहाँ क्यों है, इसका कारण भी यही है। प्रतिलिपिकार की सामान्य असावधानी के कारण ऐसा

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६१, अंक १ में ईश्वरदास या सूरजदास शीर्षक निबंध।

२. ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियाँ, सं० डा० शिवगोपाल मिश्र, ग्वालियर, प्र० सं०, पृ० १०५ पर उद्धृत पंक्तियाँ।

३. सुनत कथा कष्ट मेटि जाई। तुलसीदास कहँ गुनगाई।
भरतविलाप संपूरन भैऊ। सुरजदास कवि तासु लै गैऊ।—वही

४. भरथबिलाप कथा बिमल सुरजदास कबि गाइ।
जो नर सुनैं जो गावहीं जन्म सफल होइ जाइ॥
—ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ६१, अंक १ में ईश्वरदास या सूरजदास शीर्षक लेख।

हुआ है। जिस पोथी की प्रतिलिपि वह प्रति है उसमें भी 'रामजन्म' के साथ ही 'भरतविलाप' लिखित रहा होगा और इसलिये प्रतिलिपिकार ने दोनों के रचयिता को एक समझकर इस दोहे में भी सूरजदास का नाम लिख दिया। अनेक प्रतियों के अंत में ईश्वरदास की छापवाला दोहा है[५] जिसमें आसानी से ईश्वरदास के स्थान पर सूरजदास नाम बैठा दिया जा सकता है। फिर शास्त्री जी ने ही अन्यान्य पोथियों का उल्लेख किया है जहाँ 'भरतविलाप' सूरजदास की पुस्तकों के साथ लिखित है लेकिन उनमें कहीं 'भरतविलाप' के लेखक सूरजदास नहीं बताए गए हैं। मैंने भी एक दर्जन से अधिक प्रतिलिपियाँ देखी हैं किंतु उनमें से कहीं भी सूरजदास का नाम लेखक के स्थान पर नहीं है। और 'भरतविलाप' मुद्रित भी हुआ था।[६] इनमें वह सर्वत्र पृथक् और स्वतंत्र ही है तथा किसी में भी सूरजदास का नाम नहीं है। दूसरी ओर सूरजदास की कोई रचना आद्यावधि मुद्रित नहीं हुई। इससे सिद्ध है कि शास्त्रीजीवाली प्रति प्रतिलिपिकार के प्रमाद का ज्वलंत उदाहरण है और उस प्रति को अपवाद ही समझना चाहिए। निष्कर्षत: 'भरत विलाप' के रचयिता सूरजदास कथमपि नहीं हो सकते और इस प्रसंग में उनका नाम विचार की अपेक्षा नहीं रखता।

अब इस संदर्भ में दो नाम विचारणीय रह जाते हैं–तुलसीदास और ईश्वरदास। एकाधिक ईश्वरदास का नाम आज प्राप्त है जिनमें प्राचीनतम हैं 'सत्यवती कथा', 'एकादशी कथा' और 'स्वर्गारोहिणी कथा' के लेखक जिन्होंने १५०० ई० (१५५७ संवत्) में 'स्वर्गारोहिणी कथा'[७] और १५०१ ई० (१५५८ संवत्) में 'सत्यवती कथा'[८]

५. भरथ विलाप कथा बिमल इसुरदास कही गाइ।
जो नर सुनही जो गावही जनम सुफल होय आइ॥
—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना की प्रति।

६. कलकत्ते मृत्यलाल शील के यंत्र में छापा गया। ११ न० अहीरी टोला। सन् १३०६।
इसकी एक प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी में है। सन् १९०७ ई० की लिथो की हुई एक प्रति बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना में है।

७. संवत् कै अब करौ बखाना, पंद्रह सै सत्तावन जाना
... ...
तेहि दिन कथा अरंभन कीन्हा, रामचंद्र मोहि बुधि बुधि दीन्हा
—ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियाँ, पृ० १४०।

८. जोति एक पांडव के संगा पाँच आतमा आठों अंगा
... ...
ता दिन कथा आरंभ यह ईसरदास कवि कीन्ह।—वही, पृ० ६७।

लिखी। डा० शिवगोपाल मिश्र ने 'भरतविलाप' को इसी ईश्वरदास की रचना मानकर उनके ग्रंथों के साथ 'भरतविलाप' को भी संपादित कर दिया है। डा० मिश्र ने 'सत्यवती कथा' और 'भरतविलाप' के कुछ स्थलों, भाषा तथा शैली में साम्य पाया है[९] और इसी आधार पर वे 'भरतविलाप' को 'सत्यवती कथा' के लेखक ईश्वरदास द्वारा रचित मानते हैं। लेकिन अनेक ऐसे प्रत्यक्ष कारण हैं जिनसे 'भरतविलाप', 'सत्यवती कथा' के लेखक ईश्वरदास का रचा हुआ प्रमाणित नहीं होता। ईश्वरदास ने अपनी रचनाओं—'सत्यवती कथा', 'एकादसी कथा' और 'स्वर्गारोहिणी कथा'—में रचनाकाल तथा दिल्ली-सुलतान का उल्लेख किया है किंतु 'भरतविलाप' में न तो कहीं रचनाकाल दिया गया है और न दिल्ली-सुलतान का ही उल्लेख है। अगर 'भरतविलाप' उनकी कृति होती तो इसमें भी वे अवश्य ही रचनाकाल एवं दिल्ली-सुल्तान का उल्लेख करते। दूसरे, ईश्वरदास कट्टर रामभक्त मालूम पड़ते हैं, उपर्युक्त तीनों पुस्तकों में उन्होंने इसका परिचय दिया है।[१०] यहाँ तक कि उन्होंने 'रामनाम जेहि कबहुँ न भावा, ताकर मुँहुँ नहि दइअ देखावा'[११] कहा है, पर 'भरतविलाप', जो राम के ही जीवन से संबद्ध है, में राम का एक बार भी कहीं स्मरण नहीं किया गया है। यही नहीं, बंदना का जो क्रम

९. ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अयन्‍ कृतियाँ, पृ० १०८।

१०. क—पहिलै रामचंद्र कै दाया।

तेहि पाछे जालपा कै माया
तेहि प्रसाद होइ ग्रंथ रसारा ॥ ३ ॥ — सत्यवती कथा।

ख—सीतापति बंदौं रघुराया, मात पिता औ गुरु कै दाया
रामचंद्र मोरि पुरवै आसा, पंडित जिन्ह कर दास तिन्ह कर दासा ॥३॥

—एकादसी कथा।

ग—रामनाम कवि नरक नेवारा, तेहि सेवा मन लागु हमारा ॥ ३ ॥

—स्वर्गारोहिणी कथा।

घ—तेहि दिन कथा अरंभन कीन्हा, रामचंद्र मोहि सुधि बुधि दीन्हा ॥ ६ ॥

—वही, ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियाँ।

११. वही, पृ० १४०।

उपर्युक्त पुस्तकों में है, वह 'भरतविलाप' में नहीं है। 'सत्यवती कथा' में क्रमशः गणेश, आलपा, भवानी और राम; 'एकादसी कथा' में मातापिता, गुरु और राम तथा 'स्वर्गारोहिणी' कथा में गणपति, सरस्वती, मातापिता, गुरु और राम की स्तुति की गई है लेकिन 'भरतविलाप' में केवल गणपति एवं गुरु की प्रार्थना की गई है। तीसरी बात यह कि 'सत्यवती कथा', 'एकादसी कथा' और 'स्वर्गारोहिणी कथा' मे आदि से लेकर अंत तक ईश्वरदास ने अनेक बार अपना नाम दिया है लेकिन 'भरतविलाप' की किसी भी प्रति में आरंभ या अंत के अतिरिक्त अन्यत्र ईश्वरदास के नाम की छाप नहीं है। यह सत्य है कि इन तीनों पुस्तकों की और 'भरत विलाप' की भाषा एक है, लेकिन भाषाशैली कदापि एक नहीं है। 'सत्यवती कथा' के कुछ विशिष्ट प्रयोग 'भरतविलाप' में नहीं हैं। 'सत्यवती कथा' में सर्वत्र र-युक्त वर्णों में दो बार र-कार लगाया है—नर्म्र, चंद्रं, पुत्रं, त्रार्स प्रर्नवौं, आदि और न-युक्त वर्णों में अनुस्वार का प्रयोग किया गया है पुंन (पुण्य), अंन (अन्न), जगनांथ (जगन्नाथ) आदि। इन दोनों प्रवृत्तियों का 'भरतविलाप' में अभाव है। इस तरह 'सत्यवती कथा' तथा 'भरतपिलाप' में सामान्य भाषा के अतिरिक्त और कोई समता नहीं है। सामान्य भाषा का एक होना एक ही रचनाकार का द्योतक कभी नहीं हो सकता, इससे दोनों एक काल की रचना अवश्य सिद्ध होती हैं। तात्पर्य यह कि 'सत्यवती कथा', 'एकादसी कथा' और 'स्वर्गारोहिणी कथा' के लेखक ईश्वरदास 'भरतविलाप' के रचयिता नहीं हैं। 'भरतविलाप' के कर्ता अगर कोई ईश्वरदास हैं भी तो वे 'सत्यवती कथा' के ईश्वरदास से इतर हैं। अतएव अब यही विचारना है कि 'भरतविलाप' के रचयिता वस्तुतः कौन हैं। 'हिंदी साहित्य' में भी 'सत्यवती कथा' के लेखक को ही 'भरतविलाप' का रचयिता मान लिया गया है[१२] लेकिन ऐसा मानने का कोई कारण वहाँ नहीं दिया गया है।

विचार करने पर 'भरतविलाप' के रचयिता तुलसीदास ही ठहरते हैं। ऐसा कहने के दो सशक्त आधार हैं। बीस-बाईस प्रतियो की सूचना मेरे पास है जिनमें से कुछ का मैंने स्वयं अवलोकन किया है और कुछ का विवरण रिपोर्टों में या अन्यत्र देखा है। इनमें से केवल छह प्रतियों में ईश्वरदास का नाम है। दो प्रतियों में सूरजदास का नाम है, जिनपर पहले विचार किया जा चुका है। शेष प्रतियों में तुलसीदास का नाम है। इस तरह अधिकाश प्रतियाँ तुलसीदास के नाम का समर्थन करती हैं। दूसरी बात यह है कि प्राचीनतम प्रति, जिसकी

१२. हिंदी साहित्य, भा० २—डा० धीरेंद्र वर्मा, प्रयाग, प्र० सं०, पृ० ३०५।

सूचना डा० शिवगोपाल मिश्र ने दी है, में भी तुलसीदास का ही नाम है। यह प्रति उन्हें एकडला ग्राम में प्राप्त हुई थी जिसका लिपिकाल १७५६ ई० है। इसके और १८२३ ई० के बीच की कोई प्रति अभी उपलब्ध नहीं हुई है।

निष्कर्ष यह कि 'भरतविलाप' के रचयिता तुलसीदास ही हैं किंतु यह तुलसीदास रामचरितमानसकार गो० तुलसीदास से इतर ही नहीं, प्राचीनतर भी हैं। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल 'भरतविलाप' की रचना दिल्ली के बादशाह शाह सिकंदर के राज्यकाल (१४८६-१५१७ ई०) में बताते हैं। 'भरतविलाप' की प्रतिलिपियों की संख्या और उसके प्राप्तिस्थानों की अवस्थिति को देखते हुए यह सहज ही अनुमेय है कि भरतविलापकार तुलसी भी कम लोकप्रिय नहीं थे किंतु आज मानसप्रणेता गो० तुलसीदास के प्रकाश से चौंधियाई आँखें 'भरतविलाप' के रचयिता तुलसीदास को नहीं देख पातीं।

*

वर्णरत्नाकर की श्रेणी के पूर्ववर्ती ग्रंथ

भुवनेश्वरप्रसाद गुरुमैता

कालक्रमानुसार परिवर्धमान कविशिक्षा वाङ्मय और वर्णक साहित्य का आयाम इतना विस्तृत हो चुका है कि इसके प्रसार की पूर्वापरता का निर्णय और अनुसंधान करना एक प्रमुख विषय हो जाता है।

ज्योतिरीश्वर के पूर्व अनेक आचार्यों ने काव्यशास्त्र - विषयक ग्रंथ लिखे थे किंतु वे ठीक उसी श्रेणी के नहीं हैं। इसके पूर्व कवि - शिक्षा - विषयक कुछ ऐसी पुस्तकें मिलती हैं जिनके नाम इस प्रसंग में भी लिए जा सकते हैं। राजशेखर (८८०-६२० ई०) की काव्यमीमांसा, क्षेमेंद्र (१०२८-१०६५ ई०) का कविकंठाभरण और कलाविलास, अमरचंद्र यति (तेरहवीं शती का मध्य) की काव्यकल्पलतावृत्ति मम्मट (१००० ई०) का काव्यप्रकाश, देवेश्वर (१४वीं शती का आरंभ) की कविकल्पलता आदि पुस्तकें कवियों को शिक्षा देने की दृष्टि से संस्कृत में लिखी जा चुकी थीं पर वर्णरत्नाकर की अपेक्षा उनमें विषयविस्तार कम है।

वर्णरत्नाकर में ज्योतिरीश्वर ने पुरानी परंपरा का अनुकरण आँख मूँदकर नहीं किया। विषय और भाषा दोनों ही में यह पूर्ववर्ती ग्रंथों से भिन्न है। पहले के सभी ग्रंथ संस्कृत में थे। उनका विषय था काव्य की परिभाषा, उसका रूप (भाषा), उसकी आत्मा (रस), कवि का कर्तव्य और काव्य का गुण - दोष-विवेचन। इनमें भाषा के भेद (संस्कृत, प्राकृत आदि), गुण (प्रसाद, ओज और माधुर्य), रीति (गौड़ी, शौरसेनी, वैदर्भी आदि), रस, अलंकार, भाव, विभाव और संचारी भावों का विश्लेषण होता था। दसवीं शती के प्रथम चरण में राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा लिखी। अतएव उसके चार सौ वर्ष बाद उनकी काव्यपद्धति बहुत कुछ प्रचलित हो गई होगी। लेकिन ज्योतिरीश्वर उनके दो काव्यग्रंथों की ही चर्चा करते हैं—विद्धशालभंजिका और कपूरमंजरी।[1]

विषय के विस्तार की दृष्टि से वर्णरत्नाकर के पूर्ववर्ती ग्रंथों में वराहमिहिर की बृहत्संहिता, सोमेश्वर का मानसोल्लास, अंगविज्जा तथा परवर्ती ग्रंथों में पृथ्वी-

१. भाटवर्णना, वर्णरत्नाकर, पृ० ४४

चंद्र चरित्र, आईने अकबरी, सभाशृंगार एवं वर्णकसमुच्चय उल्लेखनीय हैं। वर्णरत्नाकर के सांस्कृतिक अध्ययन के लिये इन पूर्वापर ग्रंथों का परिचय आवश्यक है। और किसी भी प्राचीन ग्रंथ एवं ग्रंथकार के देश, काल तथा परस्पर पूर्वापरता के संबंध में निर्णय तत्प्रतिपादित विचारों के विकासक्रम तथा भाषा के सहज परिवर्तनशील स्वरूप के आधार पर विहित अनेक ऊहापोह द्वारा साध्य है। क्योंकि, भारतीय मनीषियों ने ऐहिक प्रतिष्ठा को गौण समझ, अपनी रचना के देशकाल के संबंध में सदा मौन का अवलंबन किया है।

बृहत्संहिता

वराहमिहिर की बृहत्संहिता विपुल विषयों के व्यापक वर्णन की दृष्टि से 'वर्णरत्नाकर' से तुलनीय हो सकती है। संपूर्ण ग्रंथ में १०७ अध्याय हैं। प्रथम शास्त्रोपनयनाध्याय में लेखक ने ग्रंथ का उद्देश्य बता दिया है — शिष्यों के द्वारा किए गए प्रश्नों के प्राचीन मुनियों के द्वारा कहे हुए उत्तर, अनेक प्रकार के कथाप्रसंग, सूर्य आदि ग्रहों की उत्पत्ति आदि थोड़े उपयोगी विषयों को छोड़कर प्राणियों के हित के लिये सब प्रयोजनों से युक्त साररूप विषयों का इस ग्रंथ में वर्णन करता हूँ।[2]

फलित ज्योतिष के ज्ञान के माहात्म्य का बखान कर वे विभिन्न ग्रहों और नक्षत्रों के संयोगों का और मनुष्य के भाग्य पर उनके प्रभावों का वर्णन करते हैं। प्रसंगतः चौदहवें कूर्म विभागाध्याय[3] में भारतीय भूगोल का विस्तृत रेखाचित्र उपलब्ध हो जाता है। यहाँ हमें मध्यदेश का विभाग, पूर्व दिशा, आग्नेय दिशा, दक्षिण, पश्चिम, वायव्यकोण, उत्तर और ईशानकोण में स्थित देशों के नाम मिलते हैं। साथ ही यह भी पता लगता है कि प्रत्येक ग्रह के रक्षणात्मक प्रभाव में कौन कौन से देश, लोग और वस्तुएँ आती हैं। तैंतालीसवें अध्याय में इंद्रध्वजोत्सव का कवित्वपूर्ण वर्णन दिया गया है[4] और उसके अनंतर और भी धार्मिक विषयों का प्रतिपादन किया गया है। उनचासवें पट्टलक्षणाध्याय में राजमुकुट का प्रमाण और फलनिर्देश किया गया है।[5] खड्गलक्षणाध्याय में प्रथम

२. प्रश्नप्रतिप्रश्नकथाप्रसंगान् स्वल्पोपयोगान् ग्रहसंभवांश्च।
सन्त्यज्य फल्गूनि च सारभूतं भूतार्थमर्थैः सकलैः प्रवक्ष्ये ॥—बृहत्संहिता,पृ०४।

३. वही, पृ० ११८ - १२१।

४. वही, पृ० २३५ - २५८।

५. वही, पृ० २६६ - २६७।

सदृश का प्रमाण और बाद में व्रणों से शुभाशुभ फलों का कथन है।[६] अंगविद्याध्याय[७] में सामुद्रिक विद्या का ज्ञान कराना अभीष्ट है।

ग्रंथ का उत्तरार्द्ध वास्तुविद्या[८] (गृहनिर्माण) संबंधी महत्वपूर्ण अध्याय से आरंभ होता है। इसमें सेनापति, मंत्री, युवराज सामंत, अधिकारी, राजपुरुष, कोश, रतिभवन आदि गृहों के प्रमाण बताकर सर्वतोभद्रवास्तु, वर्धमान, स्वस्तिक, रुचक और नन्द्यावर्त आदि चतुःशालों का फल तथा अनेक द्विशाल-त्रिशाल वास्तुओं के नाम और लक्षण दिए गए हैं। वृक्षायुर्वेदाध्याय[९] में विविध वृक्षों को बगीचे में लगाने के प्रकार, काल, नियम, विधि तथा क्रम का उल्लेख करते हुए उनकी चिकित्सा बताई गई है। प्रासादलक्षणाध्याय[१०] में देवालय निर्माण की विधि वर्णित है। इसके पश्चात् वज्रलेप, मूर्तिनिर्माण, प्रतिमाप्रतिष्ठापन का विधान बताया गया है।[११] तदनंतर गौ, बैलों, कुत्तों, मुर्गों, कछुओं, घोड़ों, हाथियों, मनुष्य, स्त्री, आतपत्रों इत्यादि के विशेष लक्षणों का वर्णन[१२] दिया गया है। इसके पश्चात् वस्त्र पहनने का फल, चामर का लक्षण तथा छत्र का प्रयोजन सिद्ध किया गया है।[१३] ७४ वें अध्याय में स्त्री के रूप और गुणों की नाना प्रकार से प्रशंसा की गई है। कादर्पिकाध्याय[१४] मे वाजीकरण की औषधियाँ बताई गई हैं। गंध युक्तिर्नामाध्याय[१५] में केशों को काला करने का प्रयोग, सुगंधतेल बनाने का प्रकार, धूप, मुखवास, स्नानीय चूर्ण, दंतकाष्ठ आदि बनाने के नियम और पान के गुण बताए हैं। पुंस्त्रीसमायोगाध्याय[१६] में अंतःपुर के जीवन का जो वर्णन दिया गया है उसमें कामसूत्र और अर्थशास्त्र के साथ सादृश्य दृष्टिगोचर होता है। शय्याओं

६. वही, पृ० २६७ - ३०३।
७. वही, पृ० ३०३ - ३१३।
८. वही, पृ० ३१६ - ३५४।
९. वही, पृ० ३७५ - ३७६।
१०. वही, पृ० ३८०–३८५।
११. वही, पृ० ३८६–९१।
१२. वही, पृ० ४०३–४७।
१३. वही, पृ० ४५३–५८।
१४. वही, पृ० ४६४–६६।
१५. वही, पृ० ४६६–७५।
१६. वही, पृ० ४७५–८०।

और आसनों को बताकर रत्नों[१७] का वर्णन है, छोटे छोटे अध्यायों में दीपकों और दंतधावनों का वर्णन है, तब एक लंबा शाकुन प्रकरण[१८] ११ अध्यायों में दिया गया है, अवशिष्ट भाग में दो अध्यायों (१०० और १०१) में विवाह का विषय है। ग्रहगोचराध्याय[१९] में छंदों की चर्चा है। १०६ अध्यायों मे ग्रंथ समाप्त हो जाता है तथापि विषयसूची के लिये एक अंतिम शास्त्रानुक्रमाध्याय[२०] दे दिया गया है।

मानसोल्लास

श्री सुनीति बाबू ने वर्णरत्नाकर को संस्कृत के विश्वकोषात्मक ग्रंथ 'मानसोल्लास' का समकक्ष ही बताया है।[२१] इसकी रचना महाराष्ट्र के चालुक्य राजा भूलोक मल्ल सोमेश्वर के राज्यकाल (११२७–११३८ ई०) मे हुई थी। लेखक ने अपने ग्रंथ को 'जगदाचार्य पुस्तक' नाम से अलंकृत किया है जो विश्वकोष का होना सिद्ध कर देता है। संपूर्ण ग्रंथ पाच विंशतियों में विभक्त है। इसकी विषय-सीमा विशाल है।

प्रथम विंशति में राजा की योग्यता और आवश्यकता, अतिथिपूजन, दान-प्रिय वचन, तप, तीर्थस्नान आदि का वर्णन है।

द्वितीय विंशति में राजगुण, मंत्रिलक्षण, पुरोहितलक्षण, ज्योतिर्विद्‌गणलक्षण गणक, सेनापति, धर्माधिकारिणिक, दंडधर, गणितविद्‌, प्रतिहार, लेखक, सारथि, वैद्य, कोश, गजभेद, गजशिक्षा, धानुपरीक्षा, रत्नपरीक्षा, दुर्ग, षड्‌बलनिरूपण (अर्थात्‌ अश्वबल, अश्वचिकित्सा, गजबल, गजचिकित्सा, रथबल और पदातिबल), प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति, उत्साहशक्ति, संधि, विग्रह, यान, आसन, आश्रय, द्वैधीभाव, साम, भेद, दान, दंडभेद, यात्राभेद, व्यूहरचना आदि वर्णित हैं।

तृतीय विंशति कला के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें मंदिर भूमि, काष्ठ आदि के लक्षण, मूर्तियों के भेद, गृहोपभोग, स्नानभोग, ताबूलभोग, विलेपन-

१७. वही, पृ० ४८७–६७।

१८. वही, पृ० ४९१–५६८।

१९. वही, पृ० ५६१–६१७।

२०. वही, पृ० ६२१–२४।

२१. वर्णरत्नाकर, डा० सु० कु० चटर्जी, भूमिका, पृ० ३३।

भोग, वस्त्रोपभोग, आसनोपभोग, चामरभोग, पुत्रभोग, अन्नभोग, पानीयभोग, यानोपभोग, छत्रभोग, शय्याभोग, धूपभोग आदि वर्णित हैं।

चतुर्थ विंशति में शस्त्रविद्या, शास्त्रविनोद, गजवाह्याली विनोद, तुरवाह्याली अंकविनोद, मल्लविनोद, कुक्कुट - लावक - मेष - महिष - विनोद, पारावत-विनोद, श्येनविनोद, मत्स्यविनोद और मृगयाविनोद आदि प्रकरण है।[२२]

अंगविज्जा

अंगविज्जा[२३] जैन साहित्य का प्राचीन ग्रंथ है। यह कुषाण गुप्तयुग के संधिकाल का ज्ञात होता है। जैसलमेर की चौदहवीं एवं पंद्रहवीं शती में लिखित ताड़पत्रीय प्रतियों एवं अन्यान्य भंडारों की सोलहवीं एवं पिछली शताब्दियों में लिखित प्रतियों के आधार पर मुनि पुण्यविजय ने इसका संशोधन और संपादन किया है तथा प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी ने इस मूल्यवान संग्रहग्रंथ को प्रकाशित किया है।

इस ग्रंथ की भाषा सामान्यतया महाराष्ट्री प्राकृत है, फिर भी एक सामान्य नियम है कि जैन रचनाओं में जैन प्राकृत—अर्धमागधी भाषा का प्रभाव रहता है अतः जैन ग्रंथों में प्रायोगिक वैविध्य दिखता है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि जैन निर्ग्रंथों का पादपरिभ्रमण अनेक प्रांतों में होने के कारण उनकी भाषा के ऊपर जहाँ तहाँ की लोकभाषा आदि का प्रभाव पड़ता है और वह मिश्र भाषा हो जाती है। यही कारण है कि इसे अर्धमागधी कहा जाता है। इस अंगविज्जा ग्रंथ की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत प्रधान होती हुई भी वह जैन प्राकृत है। इसी कारण से इस ग्रंथ में ह्रस्व-दीर्घ स्वर, द्विर्भाव-अद्विर्भाव, स्वर व्यंजनों के विकार-अविकार, विविध प्रकार के व्यंजनविकार, विचित्र प्रयोग – विभक्तियाँ आदि बहुत नजर आती है।[२४] भाषा और संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से यह ग्रंथ बड़ा ही महत्वपूर्ण और वर्णरत्नाकर से तुलनीय है।

अंगविद्या प्राचीन काल की एक लोकप्रचलित विद्या थी। शरीर के लक्षणों से अथवा अन्य प्रकार के निमित्त या चिन्हों से किसी के लिए शुभाशुभ फल का कथन इस विद्या का विषय था।[२५] पाणिनि ने ऋगयनादि गण में अंग-

२२. सोमेश्वर विरचित मानसोल्लास, संपा० श्री गोंदेकर, भा० १ और २।

२३. पुव्वायरियविरइया अंगविज्जा, संपा० मुनि पुण्यविजय।

२४. वही, प्रस्तावना, पृ० ६।

२५. अंगविज्जा, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, ना० प्र० प०, वर्ष ६१, अंक ४ (संवत् २०१३) पृ० २१७।

विद्या, उत्पात, उत्पाद, संवत्सर, मुहूर्त निमित्त आदि विषयों पर लिखे जानेवाले व्याख्यानग्रंथों का उल्लेख किया है।[२६] ब्रह्मजाल सुत्त में अंगविद्या के अध्ययन को भिक्षुओं के लिये वर्जित माना है।[२७] किंतु यह अंगविद्या क्या थी, इसको बतानेवाला एकमात्र प्राचीन जैन ग्रंथ यह 'अंगविज्जा' नाम से बच गया है, जिसकी गणना आगम साहित्य के प्रकीर्णक ग्रंथों में की जाती है। इसमें ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व की बहुत बड़ी शब्दावली है, जिससे तत्कालीन जीवन के अनेक क्षेत्रों की जानकारी मिल जाती है। ये सूचियाँ बौद्ध ग्रंथ महाव्युत्पत्ति की सूचियों के समान ही महत्वपूर्ण हैं।

इस ग्रंथ में कुल साठ अध्याय हैं। कहीं कहीं लंबे अध्यायों में पटल नामक अवांतर विभाग, जैसे आठवें अध्याय में विविध विषय संबंधी तीस पटल और नौवें अध्याय में १८६८ कारिकाएँ, हैं जिनमें २७७ विविध विषयों का निरूपण है [२८]

'अंगविज्जा' में शरीर के अंग, मनुष्य, तिर्यक् अर्थात् पशु पक्षि आदि क्षुद्रजंतु, देव देवी और वनस्पतियों से संबंध रखनेवाले कितने ही पदार्थ वर्णित हैं जो सांस्कृतिक अध्ययन में लाभ पहुँचा सकते हैं। इस ग्रंथ में मनुष्य से संबंध रखनेवाले बहुविध पदार्थ, जैसे चतुवर्ण, जातिविभाग, गोत्र, योनि श्रटक, सगण संबंध, कर्मधंधे व्यापार, स्थान अधिकार, आधिपत्य, यान वाहन, नगर, ग्राम, मंडप द्रोणमुखादि, प्रादेशिक विभाग गृह प्रासादादि के स्थानविभाग, प्राचीन सिक्के, विविधप्रकार के तैल, अपाश्रय (शय्या, आसन, यान, खंभ वस्त्र आदि) के साधन, रत - सुरत क्रीड़ा के प्रकार, दोहद, रोग, उत्सव, वादित्र, आयुध, नदी, पर्वत, खनिज, वर्ण - रंग, मंडल, नक्षत्र, कालवेला, व्याकरणविभाग, इन सबके नामों का विपुल संग्रह है।[२९]

तिर्यग्विभाग के चतुष्पद, परिसर्प, जलचर, सर्प, मत्स्य, क्षुद्र जंतु आदि के नामों का सविस्तर वर्णन है। वनस्पति विभाग में वृक्ष, फल गुल्म, लता आदि के नामों का संग्रह भी खूब है। देव और देवियों के नाम तो काफी संख्या में हैं ही।

२६. पा० ४।३।७३।

२७. दीर्घनिकाय।

२८. अंगविज्जा, डा० अग्रवाल, ना० प्र० प०, वर्ष ६१, अंक ४; अंगविज्जा, भूमिका।

२९. अंगविज्जा, मुनि पुण्यविजय, प्रस्तावना।

इन पदार्थों का वर्णन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की दृष्टि से महत्व का है। ग्रंथकार आचार्य ने वृक्ष, जाति और उनके अंग, सिक्के, भोजन, वस्त्र, क्षुद्र जंतु जैसे जड़ एवं चेतन पदार्थों को पुं - स्त्री - नपुंसक विभाग में विभक्त किया है। कई चीजों के नाम, वर्णन और एकार्थक भी मिलते हैं। वर्णरत्नाकर का अंगविज्जा के साथ तुलनात्मक दृष्टि से सांस्कृतिक अध्ययन आवश्यक है।

काव्यमीमांसा

दुर्भाग्यवश 'काव्यमीमांसा' नामक यह विशाल विश्वकोश संपूर्ण नहीं मिलता। राजशेखर ने १८ भागों या अधिकरणों में उसे लिखा था। इसका 'कविरहस्य' नामक केवल प्रथम अधिकरण ही उपलब्ध है। वर्णरत्नाकर पर उसकी छाप निश्चय ही दिखाई देती है। हेमचंद्र, वाग्भट, भोजराज तथा शारदातनय आदि आलंकारिकों ने इस ग्रंथ के अनेक प्रसंगों के पूरे के पूरे उद्धरण उठाकर अपने ग्रंथों में रख दिए हैं. इससे इसका प्राचीनकालीन महत्व प्रगट होता है। ज्योतिरीश्वर की भाँति राजशेखर ने भी देश काल से संबंधित विपुल सामग्री हमें दी है।

उपलब्ध अधिकरण के अठारह अध्यायों में प्रथम तीन अध्याय तो भूमिका के रूप में है और शेष पंद्रह अध्यायों में कविरहस्य का विषय वर्णित किया गया है। आरंभिक अध्यायों में लेखक ने काव्यपुरुष की उत्पत्ति तथा साहित्य - विद्यावधू के साथ उसका विवाह संबंध वर्णित किया है जो सर्वथा नूतन कल्पना है। प्रथम अध्याय में राजशेखर ने अठारहों अध्यायों के विषयों का निर्देश कर दिया है।[१०] साथ ही इसकी प्रामाणिकता और उपादेयता भी सिद्ध की है। शास्त्रनिर्देश नामक द्वितीय अध्याय में काव्य को अपौरुषेय और पौरुषेय दोनों प्रकार के शास्त्रों में मुख्य सिद्ध करते हुए शास्त्रों का विस्तार करनेवाले सूत्र, भाष्य, वार्तिक, टीका, विवृति, कारिका एवं पंजिका आदि की सरल सुंदर व्याख्या प्रस्तुत की गई है। तृतीय अध्याय में काव्यपुरुष की उत्पत्ति, उसका विकास, रीति वृत्ति, प्रवृत्ति आदि का सरल वर्णन पौराणिक रूप से करते हुए काव्य को दर्शनशास्त्रों के समान परम पुरुषार्थ – मोक्ष का साधन भी सिद्ध किया गया है। चतुर्थ अध्याय से कविरहस्य का प्रसंग आरंभ हो जाता है। इसमें सर्वप्रथम शास्त्र के अध्ययन के अधिकारी या

१०. शास्त्रसंग्रहः शास्त्रनिर्देशः, काव्यपुरुषोत्पत्तिः, पदवाक्यविवेकः, पाठप्रतिष्ठा, अर्थानुशासनं, वाक्यविधयः, कविविशेषः, कविचर्या, राजचर्या, काकुप्रकाराः, शब्दार्थहरणोपायाः, कविसमयः, देशकाल विभागः भुवनकोश इति कविरहस्यं प्रथमाधिकरणमित्यादि ।—काव्यमीमांसा, पृ० ४ ।

काव्यविद्या के शिष्यों की मीमांसा की गई है। इसके अनंतर काव्यरचना, कवि और आलोचक के संबंध आदि का गंभीर विवेचन किया गया है।

पंचम अध्याय में प्रतिभा और व्युत्पत्ति[३१] की सूक्ष्म मीमांसा की गई है। इसी प्रकरण में तीन प्रकार के कवियों — शास्त्रकवि, काव्यकवि और उभय कवि का विवेचन किया गया है। शास्त्रकवि, काव्य में रस संपत्ति की वृद्धि करता है तो काव्यकवि, शब्दार्थों को मृदु मनोहर बना देता है और उभय कवि में दोनों गुण होते हैं। पुनश्च उनके भेदों की परिगणना कराते हुए अंत में पाक के संबंध में मीमांसा करते हुए अनेक आचार्यों के मतो की समीक्षा प्रस्तुत की है।

षष्ठ अध्याय में पदों और वाक्यों की व्याख्या, उनके लक्षण और उदाहरण दिए गए हैं। काव्य का लक्षण करते हुए गुण और अलंकार युक्त वाक्य को काव्य माना है। काव्यविद्या के संबंध में जो तीन आक्षेप हैं—काव्य अतिशयोक्तिपूर्ण होते हैं, शृंगाररस प्रधान होने से असत् विषयों के उपदेशक हैं, इनमें अश्लील विषयों के वर्णन आते हैं, इनका तर्कपूर्ण उत्तर दिया गया है। राजशेखर का कहना है कि कहीं व्यावहारिक शिक्षा के रूप में और कहीं वस्तुस्थिति का स्पष्ट चित्रण करने के लिये वेदों, शास्त्रों और पुराणों में भी ऐसे विषय पाए जाते हैं।[३२] अतः काव्य में इनका समावेश नवीन नहीं है।

सातवें अध्याय में ब्राह्म, शैव और वैष्णव इत्यादि तीन प्रकार के वाक्य कहे गए हैं। देवताओं और देवजातियों की भाषाओं का विवेचन किया गया है। दूसरा प्रकरण काकुसंबंधी है। शास्त्रों में काकु का साम्राज्य तो है ही, किंतु काव्य का यह जीवन है। इसके बाद काव्यपाठ प्रकरण में कहते हैं कि गले का सुरीलापन और काव्य पढ़ने का ढंग अनेक जन्म के संस्कारों से किसी किसी कवि को ही प्राप्त होता है।[३३] आगे राजशेखर ने भिन्न भिन्न देशों के कवियों की पाठप्रणाली का विनोदपूर्ण विवेचन किया है।

३१. प्रतिभाव्युत्पत्तीमिथः समवेते श्रेयस्यां इति यायावरीयः। न खलु लावण्यलाभादृते रूपसम्पदृते रूपसम्पदो वा लावण्यलब्धिर्महते सौन्दर्याय। —काव्यमीमांसा, पृ० ३६।

३२. प्रक्रमापन्नो निबन्धनीय एवायमर्थः इतियायावरीयः। तदिदं श्रुतौ शास्त्रे चोपलभ्यते। —काव्यमीमांसा, पृ० ३८।

३३. पाठ सौंदर्य मनेकजन्मविनिर्मितम्—वही, पृ० ८०।

अष्टम अध्याय में राजशेखर ने मुख्य रूप से श्रुति, स्मृति, इतिहास, दर्शन, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, कामशास्त्र आदि काव्यार्थ के बारह स्रोत और उनमें भी अनेक अवांतर स्रोत बताए हैं। इस अध्याय का तात्पर्य है कि कवि के लिये अनेक शास्त्रों, व्यवहारों, कलाओं तथा देशकाल आदि का व्यापक ज्ञान अपेक्षित है।

नवम अध्याय में कवि के वर्णनीय सात विषयों की सूक्ष्म आलोचना करते हुए अर्थ की व्यापकता और उसके अवांतर सूक्ष्मतम विषयों की दार्शनिक एवं वैज्ञानिक मीमांसा की गई है। राजशेखर ने सात विषयों का उदाहरण सहित उल्लेख किया है – स्वर्गीय, मर्त्यगत, स्वर्गमर्त्यगत, पातालीय, मर्त्यपातालीय, दिव्यपातालीय और दिव्यमर्त्यपातालीय। आगे वे कहते हैं कि विषय असीम है और अर्थ अनंत काव्यों में प्रतिपादित विषय प्रायः असत्य और कल्पित होते हैं, सुनने मात्र मे सुंदर लगते हैं। जैसे—नीले आकाश में उड़ते हुए हनुमान ने अपने पीतवर्ण बालो की कांति से आकाश को पीला बना दिया।[34] काव्यरचना में सरसता या नीरसता कवि के शब्दो द्वारा होती है, अर्थ के कारण नहीं।[35] पर्वत[36], समुद्र[37], नदी[38] हाथी, घोड़े रथ आदि अत्यंत कठोर और भयानक अर्थों को कवि, शब्दो के द्वारा सरस सुंदर बना देते हैं। इसके अनंतर मुक्तक और प्रबंध भेद से दो प्रकार के काव्यार्थ कहे गए हैं। अंत में कहा गया है कि जो कवि जितनी ही भाषाओं में प्रवीण होता है, वह उतना ही यशस्वी होता है।[39]

दशम अध्याय में कवियों के रहनसहन और दैनिक व्यवहार के संबंध में छोटी छोटी बातों तक का उल्लेख किया गया है जो बड़ा ही चित्ताकर्षक है। समाज में कवियों का अच्छा संमान था। 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार साधारण जनता भी काव्यप्रेमी थी। कविता की अनेक भाषाएँ थीं, जिनमें संस्कृत.

३४. 'अपां' लङ्घयितु' राशिं रुचा पिंजरयन्नमः।
खमुत्पात हनुमान्नीलोत्पलदलद्युतिः॥—काव्यमीमांसा, पृ० १०६।

३५. वही, पृ० १११।

३६. वही, पृ० ११२।

३७. वही, पृ० ११२।

३८. वही, पृ० १११।

३९. संस्कृतवत्सर्वास्वपि भाषासु यथासामर्थ्यं यथारुचि यथाकौतुकं चावहितः स्यात्।—वही, पृ० ११६।
'यस्येत्थं धीः प्रगल्भा स्नपयति सुकवेस्तस्य कीर्तिर्जगन्ति'—वही, पृ० १२०।

प्राकृत, अपभ्रंश और पैशाची भाषाएँ प्रधान थीं। राजकवि का जीवन उच्च स्तर का था। उनके निवासस्थान बाग-बगीचों, फव्वारों, सरोवरों और वापियों से सुशोभित थे। उनमें पशु पक्षी, पुष्प, वृक्ष, लतामंडप और कृत्रिम पर्वत रहते थे। वे सुगंधित द्रव्यों का सेवन और बहुमूल्य वस्त्र धारण करते थे। कवि के लिये एकांतप्रियता आवश्यक थी। उनके लेखनागार और लेखनसामग्री भी वर्णित हैं। उनकी रचनाओं की परीक्षाएँ भी होती थीं। राजशेखर ने कुछ राजसभाओं का भी वर्णन किया है। इसमें जिस आदर्श का विधान किया है उस पर विश्वास करने में कोई बाधा नहीं।[४०]

राजशेखर के अनुसार राजा कवियों की सभाओं का आयोजन करे। इसके लिये एक सभाभवन तैयार कराए जिसमें सोलह खंभे, चार द्वार और आठ मत्तवारणी (अटारियाँ) हों। सभाभवन के बीच में हाथ भर ऊँची मणिवेदिका हो जिसके ऊपर राजा का सिंहासन होना चाहिए। राजा के चारों ओर भिन्न भिन्न भाषाओं के गुणी तथा कविगण बैठें। उत्तर की ओर संस्कृत भाषा के कवियों के लिये, उनके पीछे वैदिक, दार्शनिक, पौराणिक, स्मृतिवेत्ता, वैद्य, ज्योतिषी तथा उसी प्रकार के अन्य विद्वानों के लिये स्थान होना चाहिए। पूर्व की ओर प्राकृत भाषा के कवि बैठें। इसके अनंतर नट, नर्तक, गायक, वादक, कुशीलव तथा इसी प्रकार के अन्य गुणीजनों को स्थान देना चाहिए। पश्चिम की ओर अपभ्रंश भाषा के कवि और उनके पीछे चित्रकार, मणिकार, स्वर्णकार, लौहकार तथा बढ़ई एवं अन्य शिल्पवेत्ताओं का स्थान हो। दक्षिण की ओर पैशाची भाषा के कवि और उनके पीछे गणिका, जादूगर तथा पहलवान आदि अपना आसन ग्रहण करें। ऐसी सजी हुई सभा में बैठकर राजा को काव्यगोष्ठी प्रवृत्त करना चाहिए[४१]।

एकादश अध्याय में शब्दहरण के पाच प्रकार बताए गए हैं[४२]— १—पदहरण, २—पादहरण, ३—अर्थहरण, ४—वृत्तहरण, ५—प्रबंधहरण।

उद्धरण के रूप में किसी प्राचीन कवि का पद या पाद हरण करना हरण नहीं,

४०. हिंदी साहित्य की भूमिका, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १६।

४१. काव्यमीमांसा, कविचर्या-राजचर्या-प्रकरण, पृ० १३२–३३।

४२. वही, पृ० १३६।

प्रस्तुत स्वीकरण है। अंत में चार प्रकार के कवि कहे गए हैं[43]— १-उत्पादक[44] अर्थात् मौलिक सूझबूझवाला, २-परिवर्तक अर्थात् प्राचीन कवियों की मौलिक सूझों को कौशल के साथ परिवर्तित करनेवाला, ३-आच्छादक अर्थात् दूसरों की कल्पनाओं को छिपानेवाला, ४-संवर्गक अर्थात् काव्यों की कल्पनाओं के आधार पर रचना करनेवाला।

महाकवि वह है जो नवीन कल्पनाओं की सृष्टि कर काव्य को चमत्कारी बना सके।[45] द्वादश तथा त्रयोदश अध्याय में अर्थहरण संबंधी मीमांसा है जिसमें अर्थहरण के ३२ भेद गिनाए हैं।

चतुर्दश, पंचदश और षोडश अध्यायों में कविसमय का वर्णन है। कविसमय को कवियों का एक परंपरागत साम्प्रदायिक नियम बता कर कवियों के लिये उसका वर्णन अत्यावश्यक बताया है। कविगण के शास्त्र एवं लोकव्यवहार विरुद्ध उल्लेखों का उत्तर देते हुए राजशेखर ने लिखा है कि प्राचीन कवियों ने सहस्रों शाखाओं में विस्तृत वेदों का अध्ययन और विशाल विस्तृत भूमंडल के द्वीपों में भ्रमण करके जिन नियमों का प्रचलन किया है, वे आज कालक्रम से हमें भले ही विपरीत प्रतीत हों, किंतु हमें उनकी परंपरा का निर्वाह करना ही चाहिए।[46] राजशेखर ने तीन प्रकार के कविसमय बताए हैं—स्वर्गीय, भौम और पातालीय।[47] चौदहवें और पंद्रहवें अध्याय में भौम कविसमय की विस्तृत विवेचना है और सोलहवें अध्याय में स्वर्गीय और पातालीय कविसमय का वर्णन कवियों के पथप्रदर्शन के लिये महत्वपूर्ण है।

४३. उत्पादकः कविः कश्चित्कश्चिच्च परिवर्तकः।
आच्छादकस्तथा चान्यस्तथा संवर्गकोऽपरः। —काव्यमीमांसा, पृ० १५१।

४४. उत्पादक कवि के संबंध में बाणभट्ट ने भी लिखा है—सन्ति श्वान इवासंख्या जातिभाजो गृहे-गृहे। उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव।—हर्षचरित, १।

४५. शब्दार्थोक्तिषु यः पश्येदिह किञ्चन नूतनम्।
उल्लिखेत्किंचन प्राच्यं मन्यतां स महाकविः॥—काव्यमीमांसा, पृ० १५१।

४६. पूर्वे हि विद्वांसः सहस्रशाखं साङ्गं च वेदमवगाह्य, शास्त्राणि चावबुध्य, देशान्तराणि द्वीपान्तराणि च परिभ्रम्य, यानर्थानुपलभ्य प्रणीतवन्तस्तेषां देशकालान्तरवशेन अन्यथात्वेऽपितथात्वेपनिबन्धो यः स कविसमयः। वही, पृ० १६१।

४७. स च त्रिधा स्वर्ग्यो भौमः पातालीयश्च—वही, पृ० १६१।

सप्तदश अध्याय देशपरिचय के संबंध में है। राजशेखर ने यहां भारतीय भूगोल का जो वर्णन किया है वह प्राचीन पुराणों, महाभारत, बृहत्संहिता एवं यूनान, चीन आदि देशों के यात्रियों से मिलता-जुलता है। राजशेखर ने लिखा है कि भारतवर्ष के नौ खंड हैं, जिनमें एक का नाम कुमारी द्वीप है।[४८] यही कुमारी द्वीप आधुनिक भारत है। भारत के इन नौ खंडों में वर्तमान मलाया, सिंहल (लंका), सुमात्रा, जावा, अनाम, चीन और तुर्किस्तान आदि के भाग हैं।[४९] कुमारी द्वीप में सात कुलपर्वत हैं।[५०] पूर्व में आसाम की ओर चीन का कुछ भाग तथा उत्तर में अरब, फारस, अफगानिस्तान आदि कुमारी द्वीप के ही जनपद थे।

अठारहवें अध्याय में कालविभाग का ज्ञान कवियों के लिये आवश्यक बताया गया है। पहले सौर और चांद्र मान का परिचय देते हुए बताया गया है कि कवि को किस ऋतु में किस दिशा की वायु का वर्णन करना चाहिए। तदनंतर वर्षा से लेकर ग्रीष्म तक छहो ऋतुओं का तथा उनके वर्णनीय वृक्ष, पुष्प, उत्सव, त्योहार, विनोद आदि का वर्णन है। कविरहस्य नामक इस प्रथम अधिकरण से ही स्पष्ट है कि इस ग्रंथ के सभी अधिकरण प्राप्त होते तो साहित्य का बड़ा उपकार होता।

क्षेमेंद्र कृत कविकंठाभरण

महाकवि क्षेमेंद्र काश्मीर के निवासी थे। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। ये पहले शैव थे परंतु अपने जीवन की संध्या में वैष्णव धर्म में दीक्षित हुए। अपने समस्त ग्रंथों में इन्होंने अपना दूसरा नाम व्यासदास लिखा है।[५१] साहित्यशास्त्र में

४८. इन्द्रद्वीपः कसेरुमान् ताम्रपर्णो, गभस्तिमान्, नागद्वीपः, सौम्यो, गंधर्वो, वरुणः, कुमारी द्वीपश्चायं नवमः।—काव्यमीमांसा, पृ० २२३।
भारतवर्ष के ये नौ भेद वायु और विष्णु पुराणों के आधार पर लिखे गए हैं। देखिए, वायुपुराण, अ० ४५, ७८-८५।

४९. काव्यमीमांसा, पादटिप्पणी, पृ० २२३।

५०. विन्ध्यश्च पारियात्रश्च शुक्तिमानृक्षपर्वतः
महेंद्रसह्यमलयाः सप्तैते कुलपर्वताः ॥—वही, पृ० ९३।
देखिए, मनुस्मृति, २।२२।

५१. इत्येष विष्णोरवतारमूर्तेः काव्यामृतास्वादविशेषभक्त्या।
श्री व्यासदासान्यतमाभिधेन क्षेमेंद्रनाम्ना विहितः प्रबंधः ॥
—दशावतारचरित १०।४१।

ये अभिनवगुप्त के साक्षात् शिष्य थे।[५२] इनके दो महत्वपूर्ण ग्रंथ 'औचित्य-विचार-चर्चा' और 'कविकंठाभरण' कविशिक्षा की परंपरा में उल्लेखनीय हैं। इन दोनों ग्रंथों की रचना काश्मीर नरेश अनंत (१०२८–१०६५ ई०) के राज्यकाल में हुई थी।[५३] इनके दशावतारचरित का रचनाकाल १०६६ ई० होने के आधार से इनका आविर्भाव काल ११वीं शती का उत्तरार्ध है।

अपने 'औचित्यविचारचर्चा' में औचित्य के सिद्धांत की इन्होंने बड़ी उत्तम व्याख्या की है। भरत और आनंदवर्धन के बाद क्षेमेंद्र ने ही औचित्य के नाना प्रकारों का विशिष्ट विवेचन इस लघु किंतु महत्वपूर्ण ग्रंथ में किया है। 'औचित्य' और 'अनौचित्य' के निर्णय में बहुधा काव्य में प्रथित रूढ़ियाँ ही कसौटी बन जाती हैं। पर क्षेमेंद्र के औचित्य सिद्धांत का विश्लेषण करने पर 'परिवर्तनीय अभिरुचि या व्यक्तिगत रुचि'[५४] ही इसका प्रमुख आधार है।

'कविकंठाभरण का कविशिक्षा - विषयक साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इसके अनुसार शिक्षा की पांच कक्षाएं इस प्रकार हैं—

१ - अकवेः कवित्वाप्तिः – कवित्वशक्ति का यत्किंचित् संपादन

२ - शिक्षाप्राप्तगिरः कवेः – पदरचना - शक्ति - संपादन करने के बाद उसकी पुष्टि करना।

३ - चमत्कृतिश्च शिक्षाप्तौ – काव्य चमत्कार।

४ - गुणदोषोद्गतिः—काव्य के गुणदोष का परिज्ञान।

५ - परिचयप्राप्ति—शास्त्रों का परिचय।

काव्यकल्पलतावृत्ति

कविकंठाभरण के बाद बारहवीं शती ई० में जयसिंह सिद्धराज के समय मे जयमंगलाचार्य ने कविशिक्षा[५५] नामक पुस्तक लिखी जो स्वल्प होने के कारण

५२. श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात् साहित्यं बोधवारिधे।
आचार्यशेखरमणेः विद्याविवृतिकारिणः ॥—बृहत्कथामंजरी १६।३७।

५३. तस्य श्रीमदनन्त राजनृपतेः काले किलायं कृतः।—औ० वि० च०।
राज्ये श्रीमदनन्तराज नृपतेः काव्योदयोयं कृतः।—कविकंठाभरण।

५४. संस्कृत पोएटिक्स—एस० के० डे०, भा० २, पृ० ३५८।

५५. काव्यकल्पलतावृत्ति, जगन्नाथ शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, भूमिका, पृ० १।

उपयुक्त न सिद्ध हो सकी। हलायुध ने भी इसी के आसपास 'कविरहस्य' नामक पुस्तक लिखी जो केवल क्रियापदों की विचित्रता तक सीमित रही।[५६] प्रासंगिक रूप से कविशिक्षा का विवेचन करनेवाले अन्य ग्रंथ विषय की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं।

कविशिक्षा की दृष्टि से अमरचंद्र कृत काव्यकल्पलतावृत्ति को बहुत अधिक सफलता मिली। इसका आंशिक निर्माण अरिसिंह ने किया और पूर्ति की अमरचंद्र ने। इसपर लिखी अमर की वृत्ति[५७] से पता चलता है कि इस मूल ग्रंथ की रचना में दोनों ग्रंथकारों का सहयोग रहा।[५८] इसकी रचना तेरहवीं शती ई० के मध्य में हुई थी। इसके रचयिता अमरचंद्रयति बीसलदेव के जैन मंत्री वस्तुपाल (१२४२ ई०) के समय के थे।[५९] प्रस्तुत ग्रंथ में नगर्य वस्तुओं की संपन्नता एवं छंदोबद्धता के नियमों का सम्यक् रूपेण परिपालन हुआ है। इसमें चार प्रतान (खंड) हैं और प्रत्येक प्रतान के अंतर्गत अनेक स्तवक (अध्याय) हैं।

काव्यकल्पलतावृत्ति में काव्यरचना के लिये उपयोगी प्रभूत सामग्री एवं साधनों को जुटाया गया है। इसमें अरिसिंह के सूत्र और अमरचंद्र यति की वृत्ति एक साथ मिलती है। अमरचंद्र और अरिसिंह एक ही गुरु, जिनदत्त सूरि के सहपाठी शिष्य प्रतीत होते हैं।[६०] समग्र काव्यसाहित्य का मंथन कर अमरचंद्र ने अपनी वृत्ति में अनेक काव्यरूढ़ियों का अद्भुत संग्रह प्रस्तुत किया है।

यद्यपि काव्यकल्पलतावृत्ति का उद्देश्य काव्यरूढ़ियों का संग्रह करना नहीं है पर कविता के लिये उपयोगी सामग्री तथा नियमों का निर्देश करते हुए साहित्य में प्रचलित काव्यरूढ़ियों का संग्रह यहाँ अनायास हो गया है।[६१] प्रस्तुत

५६. वही, पृ० ३।

५७. इस वृत्ति का नाम ग्रंथ की पुष्पिका में कविशिक्षावृत्ति है।—काव्यकल्पलतावृत्ति, पृ० १५४।

५८. किञ्चिच्च तद्रचितमात्मकृतञ्च किञ्चित्।
व्याख्यास्यते त्वरित काव्य कृते च सूत्रम्॥—वही, पृ० १।

५९. संस्कृत पोएटिक्स—एस० के० डे, भा० १।

६०. भारतीय साहित्यशास्त्र, बलदेव उपाध्याय, पृ० ११६।

६१. भारतीय साहित्य, वर्ष २, अंक २, अप्रैल १९५७, पृ० १११।

वृत्ति में उपलब्ध रूढ़ियों का एक कोष सा प्रतीत होता है। संस्कृत साहित्य की ये चिरपरिचित रूढ़ियाँ वर्णरत्नाकर पर भी अपना अनुपम प्रभाव छोड़ गई हैं और इसलिये इन रूढ़ियों का आकलन हमारे साहित्य के परंपराप्राप्त वैभव को निरखने परखने के लिये बहुत उपयोगी है।

इन रूढ़ियों को निम्न शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है[६२]—१ - उपमान, २ - संख्या, ३ - आकार, ४ - वर्ण, ५ - वर्ण्यविषय, ६ - सदृशवस्तुसंग्रह, ७ - विरोध, ८ - आनुकल्य, ९ - आधार, १० - आधेय, ११ - कविसमय, १२ - श्रेष्ठ पदार्थ, १३ - वाद, १४ - पुराण, १५ - शैलीगत रूढ़ियाँ, १६ - अन्य।

कविकल्पलता

कविशिक्षा पर यह भी प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसके रचयिता हैं देवेश्वर। इनके पिता मालवा के राजा के महामात्य वाग्भट थे। कविकल्पलता[६३] का रचनाकाल चौदहवीं शती ई० का प्रथम चरण है। प्रस्तुत ग्रंथ काव्यकल्पलतावृत्ति का अनुकरण मात्र है। विषय के निरूपण में श्री देवेश्वर अमर के ऋणी नहीं हैं बल्कि काव्यकल्पलता-वृत्ति के बहुत से नियमों, लक्षणों और उदाहरणों को इन्होंने ज्यों का त्यों उद्धृत किया है।

राजनीतिरत्नाकर

हरिसिंह देव के मंत्री चंडेश्वर ठाकुर ने सात खंडों में रत्नाकर ग्रंथों की रचना की थी व्यवहाररत्नाकर, कृत्यरत्नाकर, दानरत्नाकर, शुद्धिरत्नाकर, पूजारत्नाकर विवादरत्नाकर और गृहस्थरत्नाकर।

इन रत्नाकरों के अतिरिक्त राजनीतिरत्नाकर[६४] भी इन्हीं के द्वारा विरचित है। यह सोलह तरंगों में विभाजित है। प्रत्येक तरंग के आरंभ और अंत में तरंग (अध्याय) का नाम उपलब्ध है।

अपने रत्नाकरों में लेखक को जहाँ अपरिचित संस्कृत शब्दों का प्रयोग करना पड़ा, वहाँ मैथिल में अर्थ दे दिए हैं। ऐसे शब्द लगभग एक सौ से अधिक है।



६२. वही, पृ० ११२।

६३. कविकल्पलता, बिब्लिओथिका इंडिका, सं० शरतचंद्र शास्त्री, प्रका० एशि० सो० बंगाल, १९१३।

६४. चंडेश्वर कृत राजनीतिरत्नाकर, सं० काशीप्रसाद जायसवाल, बि० उ० रि० सो०, पटना, द्वि० सं०, १९३६।

प्रेमरत्न और उसकी रचयित्री

[पूर्णमासी राय]

हिंदी कृष्णकाव्यधारा में लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की कुरुक्षेत्र लीला को प्रकीर्णक पदों की मुक्तक परंपरा से अलग हटकर प्रबंधात्मक सौष्ठव के साथ उपस्थित करनेवाली कवयित्री बीबी रत्नकुँवरि का नाम विशेष उल्लेख्य है। ये सुप्रसिद्ध राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद की पितामही थीं। इन्होंने 'प्रेमरत्न' नामक खंडकाव्य की रचना की जिसमें कुरुक्षेत्र में कृष्ण और ब्रजवासियों के मिलन का मर्मस्पर्शी चित्र अंकित है। इधर खोज के साहित्यान्वेषकों की कृपा से इनकी उक्त रचना के संबंध में भ्रम फैल गया है। उन लोगों ने यह कहना आरंभ किया कि 'प्रेमरत्न' रत्नकुँवरि की रचना न होकर किन्हीं रत्नदास या रत्नकवि की कृति है। बात यहाँ तक बढ़ी कि हिंदी के कुछ अनुसंधायकों ने भी धोखे में पड़कर रत्नदास को ही 'प्रेमरत्न' का रचयिता घोषित कर दिया।[१] किंतु ग्रंथावलोकन एवं विभिन्न खोज-विवरणिकाओं के आलोड़न - विलोड़न से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'प्रेमरत्न' रत्नकुँवरि की रचना है, किन्हीं रत्नदास या रत्नकवि की नहीं।

'प्रेमरत्न' का प्रकाशन नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से जनवरी सन् १८८१ ई० में तीसरी बार हुआ जिसे शिवप्रसाद सितारेहिंद ने अपने विज्ञापन के साथ प्रकाशित कराया।[२] तत्पश्चात् उन्हीं राजा साहब ने जब सन् १६०० ई० में अपना नया गुटका[३] तैयार किया तब उसके पहले भाग में 'प्रेमरत्न' के कुछ रमणीय अंशों को भी स्थान दिया। कहना न होगा कि नागरीप्रचारिणी सभा की सन् १६०६ की खोजविवरणिका में इसका विवरण लिया गया। उसमें रचयिता का नाम दिया गया है 'रत्नकवि'[४]। संभवतः उस खोज के अन्वेषक को यह ज्ञात नहीं था। कि 'प्रेमरत्न'

१. हिंदी के मध्यकालीन खंडकाव्य—डा० सियाराम तिवारी पृ० १६१।
२. 'प्रेमरत्न' की उक्त प्रति डा० हरेकृष्ण के सौजन्य से प्राप्त।
३. नया गुटका—राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद—पृ० ७५ से ८३; ई० जे० लाजरस ऐंड को०, बनारस, सन् १६०० ई०।
४. खोज विवरणिका, सन् १६०६, सं० २६७, पृ० ३६६–७।

नाम की पुस्तक 'रत्नकुँवरि' के नाम से छप चुकी है। इसके पश्चात् सन् १६२३-२५ ई० की खोजविवरणिका की प्रति की पुष्पिका में लिखा है, 'इति श्री ब्रजवासी हरिमिलनकथा प्रेमरतन कवि रतनदास कृत संपूर्णमस्तु कातृकमासे कृष्णपक्षे चतुर्दस्यां रविबासरे संपूर्णा'।[5] इस पुष्पिका की विलक्षणता ध्यान देने योग्य है कि इसमें रचनाकार का नामोल्लेख तो हुआ, कृति की रचना के वार, तिथि, मास आदि तो दिए गए किंतु मूल संवत् ही गायब कर दिया गया जिससे सन्-संवत् की सत्यता का पता लग ही नहीं सकता। उक्त खोजविवरणिका की भूमिका में डा० हीरालाल ने यह घोषित कर दिया कि रचना 'रत्नकुँवरि' की नहीं है, रतनदास कवि की है और ये रतनदास कवि सन् १६०६ ई० की खोज के रत्नकवि ही हैं।[6]

सन् १६२६ में 'प्रेमरत्न' का विवरण पुनः लिया गया।[7] यहाँ भी उसके रचयिता का नाम रत्नदास ही लिखा गया जब कि इसकी पुष्पिका में रत्नदास नाम का उल्लेख कहीं नहीं है। १६२६–३१ में उपलब्ध प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है, 'इति प्रेमरतन ग्रंथ संपूर्ण समाप्तः रामगिरि कोपिल मध्ये संवत् १८७२ वि०'। ध्यान देने की बात है कि इस विवरण के द्वितीय परिशिष्ट की सं० २६७ ए में लिखा गया है कि इस ग्रंथ की रचयित्री बीबी रत्नकुँवरि काशीनिवासिनी थीं।[8] उसी विवरणिका में इस ग्रंथ का एक अन्य विवरण भी है जिसकी भूमिका में रत्नकुँवरि का नाम स्पष्ट लिखा हुआ है जो इस प्रकार है—'इति श्री प्रेमरतन बीबी रतनकुँवरि कृत संपूर्ण समाप्तः लिखितं चेतनदास स्वपठनार्थ काशीवासी सं० १६०७ वि०'।[9] अतः इस खोजविवरणिका से 'प्रेमरत्न' की रचयित्री के रूप में रत्नकुँवरि का ही नाम सिद्ध होता है।

सन् १६४१ ई० में इस ग्रंथ का एक और हस्तलेख मिला जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है—'इति श्री रतन विरचितं प्रेमरतन समाप्तः श्री लाल गिरिधारी लाल माकीन महला पीयरी'।[10] आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने उक्त विवरणिका का

५. वही, सन् १६२३–२५ ई०, द्वितीय परिशिष्ट, संख्या ३५६।
६. वही, सन् १६२३–२५ ई०, भूमिका, पृष्ठ ११।
७. वही, सन् १६२६–३१ ई०, दे० हिंदी रूपांतर डा० बटेकृष्णकृत।
८. वही, सन् १६२६–३१ ई०, द्वितीय परिशिष्ट सं० २६७ ए०।
९. खोजविवरणिका सन् १६२६–३१ ई०, पृ० ५५६।
१०. वही, सन् १६४१, भाग २, पृ० ६४२।

संपादन करते समय भूमिका में यह घोषित कर दिया कि रत्नाकार का वास्तविक नाम रतन नहीं बीबी रतनकुँवरि है जो सं० १८४४ वि० में काशी में विद्यमान थीं। आचार्य मिश्र के अभिमत को प्रमाण मानकर नागरीप्रचारिणी सभा से अभी हाल में (संवत् २०२१ वि०) प्रकाशित होनेवाले 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण (सन् १९००– ९५५)' के प्रथम खंड में खोजविवरणिका सन् १९२३–२५ ई० और सन् १९२९–३१ ई० की भूल का शोधन कर दिया गया और रत्नकुँवरि को ही 'प्रेमरत्न' की कर्त्री मान लिया गया है।'[११]

सन् १८८३ ई० में ठाकुर शिवसिंह सेंगर द्वारा प्रस्तुत किए गए हिंदी कवियों के वृत्तसंग्रह 'शिवसिंह सरोज' में भी रत्नकुँवरि[१२] और रतनकवि ब्राह्मण बनारसी दोनों के नाम पर 'प्रेमरतन' दिया गया है। इसमें उद्धृत उदाहरण रत्नकुँवरिकृत प्रेमरत्न से ही हैं।

गार्सां द तासी बेचारे फ्रांस में बैठे बैठे यह नहीं समझ सके कि 'प्रेमरत्न' का रचयिता पुरुष है या स्त्री। इसलिये उन्होंने बीबी रत्नकुँवरि के स्थान पर बाबू रतनकुँवर लिख दिया।[१३]

सन् १८८९ में डा० ग्रियर्सन ने माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान में 'प्रेमरत्न' के रचयिता का नाम रत्नकुँवरि' बताया और इसके साक्ष्य में राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद का सन् १८८७ ई० में लिखित पत्र उद्धृत किया।[१४] किंतु प्रेमरत्न के विषयविमर्श में उक्त डाक्टर साहब से भूल हो गई। 'प्रेमरत्न' में कृष्णभक्तों का विवरण नहीं है। इसमें कृष्ण और ब्रजवासियों का कुरुक्षेत्र में पुनर्मिलन वर्णित है।

मिश्रबंधु भी इस भ्रम से न बच सके। उन लोगों ने 'प्रेमरत्न' को

११. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण–पहला भाग।

१२. शिवसिंह सरोज, पृ० ४४१ (रत्नकुँवरि बाबू शिवप्रसाद सितारेहिंद की प्रपितामही, बनारसी, सं० १८०८ में उपस्थित) प्रेमरत्न ग्रंथ इनका श्रीकृष्ण-भक्तों की जीवनमूरि है, पृ० २५६। रतन कवि–ब्राह्मण, बनारस निवासी सं० १६०५ प्रेमरत्न ग्रंथ बनाया पृ० २६५।

१३. हिंदुई साहित्य का इतिहास (तासी, अनुवादक, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० ३०७।

१४. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास (ग्रियर्सन) अनुवादक, डा० किशोरीलाल गुप्त, पृ० २१२।

रत्नकुँवरि और रत्नकवि दोनों के नाम पर लिख दिया। संभवतः उन लोगों के समक्ष १९०६ की खोजविवरणिका थी।[15]

अतः उक्त खोजविवरणिकाओं का विश्लेषण करनेपर सन् १९४१ ई० की खोजविवरणिका का मत निर्णयात्मक जान पड़ता है। पूर्वोक्त खोजविवरणों में उल्लिखित 'प्रेमरत्न' रत्नकुँवरिकृत है जिसका रचनाकाल संवत् १८४४ (सन् १७८७ ई०) है। इसका उल्लेख कवयित्री ने स्वयं किया है।[16] कवयित्री के कथनानुसार इस ग्रंथ का निर्माण काशी में हुआ, इससे उनका काशीवासिनी होना अनुमित होता है।

डा० सावित्री सिन्हा ने निर्विवाद रूप से रत्नकुँवरि को ही प्रेमरत्न की रचयित्री मानकर उनके काव्य का मूल्यांकन किया है।[17]

'रत्नकुँवरि' के जीवनवृत्त का विश्वसनीय आधार राजा शिवप्रसाद सितारे-हिंद का वह पत्र है जिसे उन्होंने सन् १८८७ ई० में डा० ग्रियर्सन को लिखा था। उन्होंने लिखा है, 'मेरी दादी रतनकुँवरि करीब ४५ वर्ष पहले मरीं जब मैं १९ वर्ष का ही था और स्वर्गीय महाराज भरतपुर के वकील की हैसियत से गवर्नर जनरल के अजमेर स्थित एजेंट कर्नल सदरलैंड की कचहरी में था। उनकी अवस्था जब उन्होंने दुनिया छोड़ी, ६० और ७० के बीच थी। मुझे दुःख है कि मैं आपको ठीक ठीक तिथियाँ नहीं दे सकता। 'प्रेमरत्न' के अतिरिक्त उन्होंने अनेक पद भी रचे थे। मेरे पास एक हस्तलिखित ग्रंथ पद की पोथी है जिसमें उन्होंने अपने हाथों अपने पद लिखे हैं। वह अच्छा गाती थीं और बहुत सुंदर लिखती थीं। वह संस्कृत अच्छा जानती थीं। फारसी की भी कुछ जानकारी थी। वह औषधियाँ भी जानती थीं और जो कुछ भी मैं जानता हूँ उसका अधिकांश मैंने उनसे ही सीखा।'[18] इस प्रकार उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि सन् १८८७ ई० से ४५ वर्ष पहले सन् १८४२ ई० में रत्नकुँवरि स्वर्गवासिनी हुईं जब कि उनकी अवस्था ६० और ७० के बीच थी। अतः उनका जन्म संवत् १८३४ वि०(१७७७ ई०) के लगभग माना जा सकता है। डा० ग्रियर्सन ने भी इसी को स्वीकार किया है।

१५. मिश्रबंधु विनोद–संवत् १९८४, भा० २, पृ० ७०१।

१६. ठारह सै चालीस चतुर वर्ष जब व्यतित भय विक्रम नृप अवनीस भये भयो यह ग्रंथ तब।–प्रेमरत्न को जीयो पर छपी प्रति सन् १८८१ तीसरी बार।

१७. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, पृ० २०१–२०६।

१८. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० २१२, सं०। ३७६

किंतु इसमें संदेह प्रतीत होता है क्योंकि प्रेमरत्न का रचनाकाल सं० १८८४ माघ सुदी पंचमी दिया गया है। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद की गणना के अनुसार इस ग्रंथ की रचना उस समय हुई जब कवयित्री की अवस्था १० वर्ष की रही होगी जिसकी संभावना कम जान पड़ती है। इसलिये राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद का कवयित्री का जीवन - तिथि - विषयक कथन ठीक नहीं प्रतीत होता। राजा साहब ने जो उनकी वय ६० और ७० के बीच लिखी है, वह यदि ८० और ९० के बीच होती तो कोई संदेह न रहता।

रत्नकुँवरि परम विदुषी कवयित्री थीं। उनके विविध ज्ञान का परिचय कराते हुए राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने 'प्रेमरत्न' के विज्ञापन में लिखा है, 'वह संस्कृत में बड़ी पंडिता थीं, छहो शास्त्र की वेत्ता। पारसी भाषा भी इतनी जानतीं थीं कि मौलाना रूम की मसनवी और दीवान शम्स तबरेज जब कभी हमारे पिता पढ़कर सुनाते थे तो उसका संपूर्ण आशय समझ लेती थीं। गानेबजाने में अत्यंत निपुण थीं और चिकित्सा यूनानी और हिंदुस्तानी दोनों प्रकार की जानती थीं, योगाभ्यास में परिपक्व थीं। यम-नियम और वृत्ति ऋषियों - मुनियों की सी थी। वह हमारी दादी थीं। इससे हमको अब अधिक प्रशंसा लिखने में लाज आती है परंतु जो साधु, संत और पंडित लोग उस समय के उनके जाननेवाले काशी में वर्तमान हैं, वे उनके गुणों को यथाविधि स्मरण करते हैं।' इस उद्धरण से उनकी बहुज्ञता और व्यक्तित्व का एक चित्र सामने आजाता है। राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद के शब्दों में, 'जो कुछ भी थोड़ी बहुत जानकारी मुझे है उसका अधिकाश मैंने उनसे पाया।' उनका अंतिम समय काशी में ही बीता। 'प्रेमरत्न' की विविध प्रतियों की प्राप्ति से यह सहज अनुमित होता है कि रत्नकुँवरि विदुषी कवयित्री के रूप में निश्चय ही बहुत प्रसिद्ध थीं।[१९]

उनका 'प्रेमरत्न' काव्यग्रंथ लीलावपु श्रीकृष्ण और प्रेममूर्ति ब्रजवासियों के कुरुक्षेत्रमिलन का रसमय आख्यान है। कृष्णकाव्य - परंपरा की विशाल राशि के बीच यह एक जगमगाता हुआ रत्न है जो काव्यशैली की दृष्टि से रामकाव्य की प्रबंधशैली के अधिक समीप जान पड़ता है। यह ठीक है कि इसमें गृहीत कथा का मूल स्रोत श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कंध (उत्तरार्द्ध) का बयासीवाँ

१९. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (सन् १९००–१९५५) प्रथम भाग, पृ० ६०७।

अध्याय है। इसमें श्रीकृष्ण के परमप्रेममय व्यक्तित्व की तरलायित मुखरता के ऊपर दार्शनिकता का मुखौटा लगा दिया गया है। भागवत के इस प्रकरण में विशुद्ध आध्यात्मिक भाव है। कृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि मेरा प्रेम प्राणियों को अमरत्व प्रदान करानेवाला है। जैसे घट, पट आदि जितने भी भौतिक पदार्थ हैं उनके आदि, अंत और मध्य में, बाहर और भीतर, उनके मूलकारण पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश ही ओतप्रोत हो रहे हैं, वैसे ही जितने भी पदार्थ हैं, उनके पहले, पीछे, बीच मे, बाहर और भीतर मैं ही मैं हूँ। इसी प्रकार सभी प्राणियों के शरीर में ये ही पाँचो भूत कारणरूप से स्थित हैं और आत्मा भोक्ता के रूप से अथवा जीव के रूप से स्थित हैं परंतु मैं इन दोनों से परे अविनाशी सत्य हूँ। ये दोनों मेरे ही अंदर प्रतीत हो रहे हैं। इस अध्यात्मज्ञान की शिक्षा से गोपियाँ भगवान से एक हो गई—उनका जावकोश नष्ट हो गया। यह है भागवत मे प्रेममय कृष्ण का दार्शनिक प्रवचन।[२०]

भागवत के इस रमणीय वृत्त को अनेक कवियों ने ग्रहण किया। महाकवि सूर ने 'सूरसागर'[२१] में कृष्ण और व्रजवासियों के इस कुरुक्षेत्रमिलन को मनोवैज्ञानिक भूमिका पर अवस्थित किया है और कृष्ण के प्रेममय व्यक्तित्व का मूर्त चित्र उतारा है। कृष्ण ने व्रजवासियों के प्रेम को स्मरण कर कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के अवसर पर स्नान करने का निश्चय किया। कुरुक्षेत्र पहुँचकर उन्होंने गोपी, ग्वाल, नंद, यशोदा आदि को बुलाने के लिये एक दूत भेजा। दूत के पहुँचने के पहले ही गोपियों को शकुन होने लगे। सूरदास ने इस कुरुक्षेत्रमिलन में राधा को ही कथा का केंद्र बनाया है। राधा और कृष्ण का वह कुरुक्षेत्रमिलन अपूर्व तन्मयता और एकाकारिता के बीच समाप्त हुआ। खोजविवरणिका से यह भी ज्ञात होता है कि चरणदास ने कुरुक्षेत्रलीला[२२] और रघुराम ने कृष्णामोदिका

२०. मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते।
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥ ४४ ॥
अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः।
भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ॥ ४६ ॥
एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्माऽऽत्मना ततः।
उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥ ४७ ॥
—भागवत दशमस्कंध, अध्याय ८२

२१. सूरसागर – दशमस्कंध, पद ४२७५–४२६७।

२२. खोजविवरणिका—१९०६–११, सं० ४५।

(रचनाकाल सं० १७४१)[२३] में इस मर्मस्पर्शी प्रकरण को अपने काव्य का विषय बनाया।

किंतु इन सबसे रत्नकुँवरि के 'प्रेमरत्न' का अपना अलग महत्त्व है। इन्होंने कुरुक्षेत्रमिलन को प्रबंधसौष्ठव के साथ उपस्थित किया है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है—कृष्ण ने सूर्यग्रहण के अवसर पर सत्यभामा, रुक्मिणी तथा अन्य द्वारकावासियों के साथ कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान इस आशय से किया कि वहाँ स्नान और ब्रजवासियों से भेंट का 'एक पंथ द्वै काज' संभव है। वहीं नंद, यशोदा और अन्य ब्रजवासी भी आए। एक गोप को द्वारकावासी से ही कृष्ण के आने की सूचना मिली। उसने सभी ब्रजवासियों में इस समाचार को फैला दिया। सभी ब्रजवासी कृष्ण से मिले। इस अवसर पर सत्यभामा कृष्ण का उपहास भी करती हैं। कृष्ण, यशोदा, नंद, गोपियों, राधा आदि से अलग अलग मिलते हैं। राधा और रुक्मिणी भी परस्पर सौहार्दभाव से मिलती हैं। इस समय कृष्ण रुक्मिणी से राधाप्रेम की विचित्रता भी बतलाते हैं। कृष्ण कुछ दिनों तक ब्रजवासियों के साथ रहते हैं और वहीं एक दिन ऋषियों का आगमन होता है। वसुदेव देवकी उन लोगों को भोजन कराते हैं। देवकी द्वारका का स्मरण दिलाकर लौटने का प्रस्ताव करती हैं। ब्रजवासी विकल हो उठते हैं। पर हरिमाया से पुनः उन्हें उचाट हो जाता है और वे घर जाने के लिये व्याकुल होने लगते हैं। किंतु यह माया राधा को नहीं व्याप्त होती। इस अवसर पर राधा और सत्यभामा में अपने अपने प्रेम को लेकर विवाद छिड़ जाता है। कृष्ण इस समय बड़ी द्विधा में पड़ जाते हैं। वे द्वारका लौटें या ब्रज। अंततोगत्वा वे दो रूप धारण कर ब्रज और द्वारका दोनों जगह जाते हैं। इस प्रकार 'प्रेमरत्न' की इस संक्षिप्त कथा में कृष्ण के प्रेमप्रवण व्यक्तित्व का पूर्ण निर्वाह संभव हो सका है। इस कृति का सौंदर्य समुचित संदर्भों के साथ ही खुल सकता है इसलिये विस्तृत विश्लेषण उचित होगा।

भागवत और सूर की क्रमशः दार्शनिकता और मुक्तकशैली से पृथक् 'प्रेमरत्न' की प्रेमप्रवणता और प्रबंधात्मकता व्यावर्तक मानी जा सकती है। इसकी कथा का आयाम अत्यंत लघु है पर कवयित्री ने अपनी प्रतिभा से कथासूत्रों का संयोजन कौशल से किया है। इसके आदि में स्तुतिविधान है। परमपुरुष परमात्मा और गुरुचरणों की वंदना है। आरंभ इस प्रकार है—

२३. वही, १३०६–८, सं० १८।

श्री राधाकृष्णाय नमः अथ प्रेमरत्न लिख्यते ॥

सोरठा— अविगत आनँदकंद परम पुरुष परमातमा।
सुमिरि सु परमानंद गावत कछु हरियश विमल ॥
पुनि गुरु पद शिर नाय उर धरि तिनके बचन बर।
कृपा तिनहि की पाय प्रेमरत्न भाषत रतन ॥

काव्य के प्रारंभ में कृष्णजन्म से लेकर द्वारका तक जाने की कथा आई है। एक दिन कृष्ण के समक्ष रुक्मिणी ने ब्रजप्रेम की चर्चा चलाई। वे भावविह्वल हो उठे। उन्होंने कहा—

यह वृंदावन सुख सघन कुंज कदम की छाँहि।
कनकमई यह द्वारका ताकी रज सम नाहिं ॥
रानी सोरह सहस तुम करत रहत अति प्रीति।
श्री राधा छवि मोहनी कछु ही न्यारी रीति ॥

उनके मन में सदा ही यह बात रहती थी कि ब्रजवासियों से मिलूँ—

प्रभु के मन यह रहत सदाही। ब्रजवासिन ते भेट्यौ नाही ॥
इक दिन दिनकर ग्रहण भयो जब। बहु नर नारी जात चले तब ॥
यह सुनि यदुनंदन मन बानी। एक पंथ द्वै कारज ठानी ॥

भागवत के कृष्ण औत्सुक्यवश पुण्यार्जन के लिये कुरुक्षेत्र गए। 'प्रेमरत्न' के कृष्ण ने 'एक पंथ द्वै काज' से कुरुक्षेत्र की यात्रा की। सूर के कृष्ण ने ब्रजवासियों के प्रेम का स्मरण कर कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। भागवत, सूर और रत्नकुँवरि के प्रेममय कृष्ण की न्यूनाधिकता लक्षित की जा सकती है।

द्वारावती से कुरुक्षेत्र जाने की तैयारियाँ होने लगीं। कवयित्री ने वातावरण का मूर्तिमान चित्र खींचा है—

कारे करिवर गरजन लागे। सावन घन जनु लखि अनुरागे ॥
अगणित तुरग चले हिहिनावत। खच्चर सहस ऊँट अररावत ॥
चौपालन मुख पाल पालकी। डोली अरु चंडोल नालकी ॥
अमित भीर मग परत न पायो। धुरि धुंध नभ मंडल छायो ॥

द्वारकाधीश के साथी वर्ण-वर्ण के वितानों में कुरुक्षेत्र में इस आनंद से विहार कर रहे हैं जैसे यह डेरा नहीं उनका घर ही है। इसी समय एक गोप नटवेश में बीच बाजार में गया. वहाँ इतना भारी लश्कर देखकर चकित हो गया -

गोप एक नटवेषकर आयो बीच बजार।
तँह खरभर लश्कर परयौ, लो अलि रह्यौ निहार ॥

इक यादव हँसि के कह्यौ, कहाँ तुम्हारो बास।
अति सुंदर तन छवि बनी, नाम करहु परकास॥

प्रश्नकर्ता ने अपना पता बताया और कहा कि यह द्वारकाधीश श्रीकृष्ण का कटक है। द्वारका नाम सुनते ही वह ग्वाल बेसुध हो गया—

सुनत द्वारका नाम तिहि लियो बिरह उर छाय।
हा नंदनंदन कान्ह कहि, गयो ग्वाल मुरझाय॥

उस भोलेभाले ब्रजवासी ने अपने बाल सहचर कृष्ण के संबंध में पूछा—

इक गोपाल संग मम जाई बस्यो नृपति ह्वै सोइ पुर जाई।
हम कँह छाँड़ि भयो सो न्यारे। ताही बिनु सब भये दुखारे॥

उस गोप ने दूर से ही आवाज लगाई। वायु का पकपन इस समाचार को गोपियों तक ले गया। अब क्या था, गोपाल के आने की प्रसन्नता विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न रूप में झलक पड़ी। गोपियाँ फड़क उठीं क्या उनका ऐसा पुण्योदय हुआ? नंद के नेत्रों में आँसू उमड़ पड़े, यशोदा का मातृत्व छलक पड़ा और वे विक्षिप्त सी हो गईं—

सुनतहि यशुमति ह्वै गई बौरी। ता ग्वालहि पूछति उठि दौरी॥
आये श्याम सत्य कहु भैया। मोहु दिखावहु नेक कन्हैया॥
निज लालन को कंठ लगाऊं। दुसह बिरह को ताप नसाऊं॥
कह अब गहर करत बेकाजहि। भेंटहु वेगि सकल ब्रजराजहि॥

यशोदा के उमड़ते वात्सल्य ने श्रीकृष्ण से मिलने की आतुरता दिखाई, क्या स्थितिपरिवर्तन से माता का वात्सल्य मंद पड़ सकता है? किंतु नंद ने यथार्थ के प्रति आशंका व्यक्त की—

× × ×

अब हरि होहिं न ब्रज की नाईं।
मणिन खचित बैठत सिंहासन।
चवर छत्र कर गहे खवासन॥
अतिहि भीर नृप बास न पावैं।
द्वारहिं ते बहु फिरि फिरि जावैं॥
छत्रपतिहि छरियन बिलगावत।
तह हम सबकी कौन चलावत॥
छपन कोटि यदु छांड़ि सगाते।
क्यों मानैं घायन के नाते॥

अब गोपाल वे नहीं हैं जो ब्रज में थे। अब तो वे द्वारकाधीश हैं। मणिखचित सिंहासन पर आसीन कृष्ण के चारों ओर दासियाँ चँवर डुलाया करती हैं।

दरवाजे पर इतनी भीड़ कि बड़े बड़े राजा उनके द्वार से लौट आते हैं। वहाँ हमें कौन पूछेगा? छप्पन कोटि यादवों को छोड़कर एक धाय के नाते हमें वे कैसे मान लेंगे? ऐसा भी हो सकता है कि ऐश्वर्य और वैभव के बीच हमारे जीवन तथा वेशभूषा से उन्हें लज्जा भी आए—

हम कँह लखि हरि मनहि लजैहैं

परंतु प्रेम के समक्ष बुद्धि के ये तर्कवितर्क नहीं टिकते। प्रवास के बाद का यह मिलन है, कितनी आतुरता होगी उसमें? सब तैयारियाँ करने लगते हैं। कोई कहता है कि हम लोग अलंकरण का सामान कहाँ पाएँगे, इसी तरह आयँगे, उनके अनुचरों की लात भी खायँगे लेकिन मिलेंगे जरूर। कोई ग्वाला नृत्य करने लगा। एक एक को बधाई देने लगा मानों उन्हें खोई हुई निधि मिल गई हो। युवतियों के उल्लास का क्या कहना। प्रियतम ही आ गया तो शृंगारोपकरणों से सुसज्जित होने लगीं। पर राधा मलिन वेश में मूर्च्छित पड़ी थीं। मनभावन के आने का समाचार पाकर जाग पड़ीं। एक गोपी ने राधा के सामने ही कहा—

सोरह सहस वरी नृप वारी। कत पूंछिहि अब ग्वारि गवारी॥

राधा मुसकाने लगीं, प्रेमिका के अंतर्भावों को परखिए—

यह सुनि के राधा मुसकाई। पाय पलोटन की सुधि आई॥
गुंजमाल हित फिरत कन्हाई। मांगत सौ सौ हा हा खाई॥
कोटिक बरहि न राजकुमारी। मेरी उनकी बातहिं न्यारी॥
बारि चरहि वारी मनभावत। पै परसत सो मन अकुलावत॥
नाना वस्तु धरहु बरु लाई। चुंबक चिमटत लोहहि जाई॥
वे नहि मानहिं रंक उदारा। श्यामहि केवल प्रेम पियारा॥

'**कोटिक बरहि न राजकुमारी। मेरी उनकी बातहि न्यारी** और सूर की **व्याहो लाख धरौ दस कूबरि अंतहि कान्ह हमारो** में व्यजित प्रेम की औदार्य दशा का चित्र सामने आता है। इसी प्रकार अनेक मनोरथों के बीच समस्त वातावरण उल्लसित हो उठा। यह तो रहा मानवजगत् के उल्लास का किंचित् दिग्दर्शन। अब देखिए कृष्णागमन का पशुजगत् पर क्या प्रभाव पड़ा? जिन गायों को गोपाल ने अपने हाथों चराया—वे श्याम के विरह में सूख गई।

सुनि हरि नाम सकल अनुरागी। श्रवण उठाय प्रेम रस पागी।
पशु को प्रेम जहाँ अस गावै। नर नारिन की कौन चलावै॥

व्रजवासियों के आगमन का समाचार जब कृष्ण को मिला तो वे विवश हो उठे। उनके नेत्रों से झरझर अश्रुधारा चल निकली। कवयित्री के ही शब्दों में—

पुलकित तन कंपित बदन बचन न सकत सँभार।
सुपन कि धौं है सत्य यह परत नहीं पतयार॥
भये जलज लोचन अरुण मोचत जल अतिधार।
बिसरि गई सब सुधि हरिहि तनहु की न संभार॥

देवकी ने सँभाला। उन्होने कहा कि तुम्हारी अन्यमनस्कता का रहस्य आज खुला। रनिवास में भी खबर गई। रुक्मिणी दौड़ी हुई आई। स्त्रीशिरोमणि रुक्मिणी कृष्ण को प्रेममग्न देखकर आनंदमग्न हो उठीं। लेकिन '**कुटिल चातुरी गरब की छाया** सत्यभामा जलभुन उठीं। बड़े राजा की लड़की जो थीं। हरि पर व्यंग्य करने लगीं। 'गोपियों के साथ रास कैसे रचाते थे, जरा हम लोगों को भी दिखाओ।' किंतु व्यग्य की शिथिल बौछार प्रेमी के मार्ग में व्याघात नहीं उपस्थित कर सकता। कृष्ण '**पद पंकज पावड़ि रहित आप चले तहं धाय**'। ग्वालों के बीच उनके चिरसहचर गोपाल पहुँचे। नटवरवेश के अनुरागी गोपालों ने नृप की वेशभूषा उतार गुंजमाला पहना दी, किसी ने कंधे पर कामरी रख दी और किसी ने सिर पर मोरपंख रखा। किसी ने धनुर्धर वेश में अपने इष्टदेव को मस्तक झुकाने का संकल्प किया तो गोपालों ने नटवरवेश में सख्यरस का आनंद लेना चाहा, तो क्या वैचित्र्य है? प्रेम की अनन्यता क्या भक्ति की अनन्यता से कम है?

प्रेमरज में कृष्ण और व्रजवासियों के मिलनपर्व का आयोजन उदात्त भूमिका पर हुआ है। सर्वप्रथम यशोदा और कृष्ण के मिलन में वात्सल्य का प्रवाह—

चकृत श्याम कह्यो कंह मैया। तबहि यशोमति लख्यौ कन्हैया॥
सपदि परे चरणन पर जाई। दृग जल पद दीन्हे पखराई॥

यहीं पर कवयित्री ने भगवत्ता को भी सामने लाकर खड़ा कर दिया है। जिन चरणों की पदरेणु को स्पर्श करके ऋषिपत्नी शिला से नारी बन गई, जिन चरणों की सेवा लक्ष्मी करती हैं, वे ही भगवान् कृष्ण यशोदा के चरणों पर शीश झुका रहे हैं। ऐसे स्थलों को देखकर रामचरितमानस का स्मरण हो आता है, जहाँ पग-पग पर गोस्वामी जी ने राम की भगवत्ता एवं ऐश्वर्य के उल्लेख से लौकिक चरित को अलौकिक सिद्ध करने के प्रयत्न में स्वास्थ्य की चिंता नहीं की।

यशोदा का हृदय वात्सल्य से उमड़ पड़ा—

कर गहि माता उर लपटायो। कठिन विरह की पीर नसायो॥
लाय रही छतियन ते माता। पुनिपुनि चूँव बदन जलजाता॥
मुख मूछन की रेख सुहाई। देखि देखि जननी बलि जाई॥

जिस कन्हैया को यशोदा ने पयपान कराया उनके मुख पर मूँछों की काली रेखा देखकर बलि बलि जाती हैं। मातृहृदय के शत शत उद्‌गारों को कवयित्री ने अपने इस लघुकाव्य में नियोजित कर दिया है। इसी प्रकार नंद, गोपी, राधा और गायों के मिलनमहोत्सव को यहाँ जिस पद्धति से वाणी दी गई है, वह सराहनीय है।

ऐसे स्थल पर राधा के रूपसौंदर्य का चमत्कारपूर्ण वर्णन पढ़कर आश्चर्य होता है। सभी राजमहिषियों ने उस अनवद्यांगी की एक झलक देखी, वे विधि को कोसने लगीं—

मन मन कहत कहा विधि कीन्हौं। इतनो रूप अहीरिनि दीन्हौं॥
ठौर कुठौर विचारत नाहीं। सठ न दीन्ह नृप घरणिन माहीं॥
नेक झलक लखि भइ गति ऐसी। नीके निरखत ह्वै है कैसी॥

इसी स्थल पर राधाप्रेम की सर्वातिशयता का निरूपण कवयित्री ने श्रीकृष्ण के मुख से ही कराया है। राधा और श्रीकृष्ण में ऐसी एकरूपता है कि एक का दुःख दूसरे का दुःख बन जाता है। रुक्मिणी ने राधा को तप्त दूध पिलाया, श्रीकृष्ण के पैरों में छाले पड़ गए। कारण—

सदा एक रस मन क्रम बानी। राधा मोपै रहत लुभानी॥
उर मैं राखत चरन हमारे। ताते परे दूध के छारे॥

श्रीकृष्ण और व्रजवासियों के मिलनपर्व के रमणीय चित्र कवयित्री ने मनोयोगपूर्वक चित्रित किए हैं। किंतु इसी बीच कथा एक दूसरा मोड़ लेती है। ऋषियों के आगमन ने मिलन की धारा में अवरोध उत्पन्न किया। वसुदेव देवकी ने उन ऋषियों को भोजन कराया। उन्होंने भगवान् के ऐश्वर्यरूप का निरूपण भी किया। उसी समय वसुदेव ने एक यज्ञ किया।

कुछ दिनों तक कृष्ण व्रजवासियों के साथ कुरुक्षेत्र में रहे। देवकी ने द्वारका का स्मरण दिलाया और प्रस्थान करने का प्रस्ताव रखा। व्रजवासी विकल हो उठे। विरह का पारावार उमड़ चला—

विरह व्यथा व्याकुल सकल व्रजवासी नर नारि।
जित तित ही रोवत सकल परि गयौ हाहाकार॥

उस समय श्री हरि ने अपनी माया फैलाई। सभी व्रजवासी चलने के लिये आतुर हो उठे। चारों ओर उदासी छा गई। किंतु यह माया राधा को व्याप्त न हुई क्योंकि वह पूर्णमाया स्वयं ही है। वह वहाँ न हिली न डुलीं। राजमहिषियाँ राधा को समझाने लगीं। राधा के हृदय में तो गोबिंद बसे हैं, वह वियोग नहीं सह सकती। वह आत्महत्या के विचार से एक सरोवर में प्रविष्ट हो गई। राधा का

प्रेम देखकर सत्यभामा कुढ़ने लगीं। उन्हे ऐसा लक्षण दिखाई देने लगा कि राधा अपने साथ श्रीकृष्ण को ले जायँगी। राधा और सत्यभामा में विवाद छिड़ गया।

सत्यभामा ने कहा, 'कुलयुवती की बात ही न्यारी है, वे पति के साथ नेम का निर्वाह करती हैं। जननी जनक जिसे सौंप देते हैं, उसे कुलवधू कभी नहीं छोड़ती। इन बातों से राधा तुम्हें लज्जा नहीं आती, पराये प्रियतम के लिये ऐसी रार मचाती हो।'

राधा ने उत्तर दिया, हे रानी! कुढ़कुढ़ कर इतना दुःख क्यों बढ़ाती हो। ये गुण कृष्ण को रंचमात्र भी अच्छे नहीं लगते—

इतनो गरब करत मन माही। जनु अरु कोउ जग ब्याहो नाही॥
सकल चहूँ दिसि ब्याहो होई। प्रेमपंथ पावत नर कोई॥

श्याम 'नेम' के वश नहीं वे 'प्रेम' के वशीभूत होते हैं। कुलवधू और प्रेमिका के इस विवाद में प्रेम और नेम के स्वरूप का स्पष्टीकरण और स्वकीया तथा परकीया की प्रेमपद्धति के भेद का सहज शैली में निरूपण किया गया है। भगवान प्रेम के अधीन हैं -

हीन बरण कुल जाति न जाने। केवल रहत प्रेमरस साने॥
अधम उधारन हरि को बाना। गणिका तारयौ सब जग जाना॥
विद्या भूति बुद्धि चतुराई। इन बातन रीझत न कन्हाई॥

तुम प्रेम का मर्म क्या जानो। रुक्मिणी प्रेम की गति और रस को जानती हैं। इसीलिए ये -

कोटि वर्ष लौं तपत प्रिय विविध भांति करि नेम।
हरि हिरदय आवै नहीं जौ लगि प्रकट न प्रेम॥

राधा का यह विश्वास है कि श्री कृष्ण ने ब्रजवास छोड़कर द्वारका में वास भी किया तो क्या हुआ, मन से वे सदैव ब्रजजन के पास ही रहते हैं—

कहा भयो हरि द्वारिका बसे छाँड़ि ब्रजवास।
तदपि मन मैं है रहे ब्रजजन ही के पास॥

इसी स्थल पर कवयित्री ने राधा के मुख से प्रेम की श्रेष्ठता को स्पष्ट कराया है—

प्रगट प्रेम रवि जा उर राजै। तहँ खद्योत नेम कत छाजै॥
जौ लगि प्रेम प्रगट नहि अहई। तो लगि नेम जगत जो गहई॥
प्रेमरतन जबही नर पावै। नेम काच तबही छिटकावै॥
प्रेमरहित नर सोहहि कैसे। सोम विहीन शर्वरी जैसे॥

प्रेम रहित नर सोहहि कैसे। बिना सरलता साधू जैसे ॥
लाख बात की बात यह करिये बक बकवाद।
जिहि व्यापै सो जानही प्रेम सुरस को स्वाद ॥

श्री कृष्ण ने भी राधा के प्रेम की महत्ता स्वीकार की और कहा—

प्रेम लह्यौ तिन सब लह्यौ कछु न एक बिनु प्रेम।
लोन बिना भोजन निरस प्रेमहीन नर नेम ॥

राधा ने बनवारी से वृंदावन में निवास करने की प्रार्थना की। श्रीकृष्ण ने कहा, 'एवमस्तु'। कौतुकनिधि भगवान् ने इस विवाद को मिटाने के लिये दो रूप धारण कर व्रज और द्वारका दोनों में निवास किया—

कौतुकनिधि हरि एक अनंता। द्वै तन धारि लये भगवंता ॥
एक द्वारका नृप तन धारी। धरणीहित प्रभु पातकहारी ॥
राधहि ताते संग न लीन्हा। अचल वेष हरि व्रजहित कीन्हा ॥

इसलिये—

धरि नट रूप राधिका साथा। वृंदावन आये व्रजनाथा ॥

वृंदावन में कृष्ण की नित्यलीला चल रही है। प्रेमाञ्जनपूर्ण नेत्रों से भक्त युगल लीला के दर्शन से तृप्त होते रहते हैं—

वे राधा माधव सदा व्रज में करत विहार।
धन्य सुथल परसत चरण रतन जात बलिहार ॥

ग्रंथ के अंत में फलस्तुति और ग्रंथपरिचय इस प्रकार है—

प्रेमरतन गावहिं सुनहिं जे सप्रेम नर-नारि।
कृष्णगान ते पावहीं सकल सुखन को सार ॥

कवयित्री ने दैन्यप्रदर्शन के साथ ग्रंथ के रचनाकाल और स्थान का निर्देश इस प्रकार किया है—

ठारह सै चालीस चतुर वर्ष जब व्यतित भय।
विक्रम नृप अवनीश भये भयो यह ग्रंथ तब ॥
माह माह के माह अति सुभ दिन सित पंचमी।
गायो परम उछाह मंगल मंगल वार-बर ॥
कह्यौ ग्रंथ अनुपम त्रय सत अरसठ चौपई।
तिहि अर्द्ध रु अरु जान, दोहा सोरह सोरठा ॥
काशी नाम सुठाम धाम सदा शिव को सुखद।
तीरथ परम ललाम सुभग मुक्ति बरदान छम ॥

ता पावन पुर माहि भयो जनम या ग्रंथ को।

× × × ×

कुरुक्षेत्र शुभ थान व्रजवासी हरि को मिलन।
लीला रस की खान, प्रेमरतन गायो रतन॥

इति प्रेमरत्न भाषा समाप्त॥

इस प्रकार 'प्रेमरत्न' की रचना संवत् १८४४ वि० अर्थात् सन् १७८७ में माघ मास में शुक्ल पक्ष की पंचमी को मंगलवार के दिन हुई। इसमें ३६८ चौपाइयाँ हैं। छंदसंख्या के संकेत के विवरण खोजविवरणिकाओं में कुछ कुछ भिन्न है।[२४]

प्रेमरत्न की समीक्षा—'प्रेमरत्न' इतिवृत्तात्मक और वर्णनप्रधान काव्य नहीं है, प्रत्युत यह भावप्रधान खंडकाव्य है। इसमें कथा की विविधता नहीं है। एक छोटी सी घटना को आधार बनाकर प्रेम का स्वरूपनिरूपण कवयित्री का लक्ष्य है। एक गोप के द्वारा कृष्णागमन का समाचार पाकर व्रजवासियों में कितना उल्लास छा जाता है और यशोदा का वात्सल्य किस तरह उमड़ पड़ता है, इनका रसपूर्ण वर्णन इस ग्रंथ का मार्मिक अंश है। इसमें वात्सल्य, शृंगार और सख्य तीनों की रसधारा प्रवाहित है। व्रजवासियों के आगमन का समाचार पाकर कृष्ण की प्रेमविह्वलता प्रेम की चरमादर्श व्यंजना मानी जा सकती है। कृष्ण और व्रजवासियों का कुरुक्षेत्र मिलन (जो इस काव्य में 'पृथकपृथक्' दिखलाया गया है) प्रेमार्णव है जिसमें कृष्ण का ऐश्वर्यज्ञान निमग्न हो जाता है। प्रवासोपरांत मिलन की चरमोत्कर्षता का रूपचित्र प्रस्तुत करना कवयित्री को अभीष्ट है जिसमें वे पूर्णतया सफल हुई हैं। अतः संपूर्ण काव्य में भावों का उच्छल प्रवाह है।

लक्ष्य करने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमरत्न कई दृष्टियों से रामकाव्य-परंपरा के मूर्धन्य ग्रंथ 'मानस' के अधिक समीप है। एक गोप के द्वारा व्रजवासियों में समाचार फैलाना 'एक सखी सिय संग बिहाई। देखन गई रही

२४. (अ) कह्यौ ग्रंथ अनुमान त्रेसत अरसठ चौपई।
तेसि अक्षर अठ जानि दोहा सोरठ सोरठा॥
खोजविवरणिका (सभा) १९१३–२५ ई०, द्वि० प०, सं० ३५६।

(आ) कह्यौ ग्रंथ अनुमान त्रशत अरसठ चौपई।
तिहि अर्ध रु अठ जानि दोहा सोरठ सोरठा॥
वही, १९२९–३१, द्वि० परि०, सं० २६७।

फुलवाई' की याद दिला देता है। कुरुक्षेत्र का मिलन चित्रकूट के राम - भरत - मिलन के अनुरूप है. केवल एक अर्थ में--स्नेह का स्नेह से मिलन। 'मानस' का चित्रकूटमिलन काव्यात्मक वैभव की पराकाष्ठा तो है ही, भावोत्सर्ग का अप्रतिम उदाहरण भी है। 'प्रेमरत्न' का कुरुक्षेत्रमिलन सहज सरल भावप्रवाह है जिसमें कलात्मक लालित्य अपेक्षाकृत कम है। दोहे – चौपाई की पद्धति का अनुगमन भी मानस का है। प्रारंभ में मंगलाचरण और अंत में फलस्तुति मानस के समान है। और तो और कृष्ण की रानियों द्वारा राधा के रूपसौंदर्य को देखकर ब्रह्मा को कोसना मानस की ग्रामवधूटियों के द्वारा रामबनवास करानेवाले ब्रह्मा को कोसने जैसा है। अतः 'प्रेमरत्न' का अध्येता इन स्थलों पर मानस की भावभूमिका में कुछ क्षणों के लिये पहुँच जाता है।

वैष्णव रसशास्त्र की दृष्टि से 'प्रेमरत्न' में वर्णित कुरुक्षेत्रमिलन समृद्धि-संयोग के अंतर्गत आता है। आचार्य श्री रूपगोस्वामी ने 'उज्वलनीलमणि' में श्रृंगारातर्गत संयोग के चार स्वरूप बतलाए हैं—१. संक्षिप्त संयोग (दर्शन, स्पर्श, गोष्ठमिलन, गोदोहन, चुंबन आदि), २. संकीर्ण संयोग (इसकी तुलना ईक्षुरस से की गई है। इसमें एक ही साथ उष्णता और माधुर्य का अनुभव होता है। इसके अवसर हैं, रास, जलक्रीड़ा, दानलीला, यमुनाजलकेलि, वंशीचोरी आदि), ३. संपन्न संयोग --(प्रवास के बाद का संयोग—झूला, होली, द्यूतक्रीड़ा). ४. समृद्धमत् संयोग (कुरुक्षेत्रमिलन), यही महामिलन भी है।

इसे पूर्णानंद की चरमावधि माना गया है। इसमें प्रेम के आलंबन रसिकशिरोमणि श्री कृष्ण हैं और आश्रय हैं व्रजवासी। इस दृष्टि से 'प्रेमरत्न' का प्रेमवर्णन उज्वलरस के संयोगपक्ष का अन्यतम उदाहरण है।

काव्यरूप की दृष्टि से 'प्रेमरत्न' एक सफल काव्य है।[२५] इसमें कृष्ण का पूर्ण जीवन न ग्रहण कर उसका एक खंड ग्रहण किया गया है। कुरुक्षेत्र में व्रजवासियों से मिलन कृष्ण के विराट जीवन और काव्यव्यापारों में एक खंड ही तो है। किंतु यह खंड भी स्वतः पूर्ण है जिसमें मानव को एक सूत्र में बाँधनेवाले प्रेम की मार्मिक झाँकी दिखाई गई है। सानुबंध कथा होने के कारण यह प्रकीर्णक रचना से अलग है। कृष्ण के विस्तृत जीवन में से केवल इसी मार्मिक अंश को लेकर लिखे जानेवाले प्रबंधकाव्यों में रत्नकुँवरि का यह काव्य अभिनव प्रयोग है।

२५. खंडकाव्य भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।—साहित्यदर्पण।

'प्रेमरत्न' में पात्रों के शीलवैविध्य के दर्शन नहीं होंगे। कृष्ण प्रारंभ में ही प्रेमी के रूप में चित्रित हैं। व्रजवासियों के प्रेम को स्मरण कर वे कुरुक्षेत्र जाते हैं, वहाँ नंगे पाँव उनसे प्रेमातुर होकर मिलते हैं। काव्य के अंत में उनके व्यक्तित्व का वह अंश अधिक भावपूर्ण है जहाँ वे राधा और सत्यभामा के विवाद को मिटाने के लिये दो रूप धारण करते हैं। इस प्रकार वे राधा के प्रेम की रक्षा और सत्यभामा के आग्रह दोनों को पूरा करने में समर्थ होते हैं। सूर के कृष्ण व्रजवासियों को आध्यात्मिक ज्ञान की घूँटी पिलाकर विदा करते हैं, वे द्विधा में नहीं पड़ते। इस काव्य में यशोदा वात्सल्यमयी माँ, नंद वात्सल्य और व्यावहारिक जगत् के शंकाकुल शीलवाले व्यक्ति, रुक्मिणी नारीशिरोमणि और आदर्शपत्नी तथा कुटिला और गर्वपरायण सत्यभामा एवं प्रेमपुत्तलिका राधा के दर्शन होते हैं। इस लघुकाव्य मे शीलवैचिव्य के स्वरूप का निदर्शन संभव भी कैसे है।

'प्रेमरत्न' की काव्यभाषा और छंदयोजना कृष्णकाव्य की परंपरा से अलग है। कृष्णकाव्य की भाषा व्रजभाषा थी, इसके माधुर्य को कृष्णकाव्य प्रणेता कैसे भूल सकते हैं? पर 'रत्नकुँवरि' ने इसमें व्रजभाषा मिश्रित अवधी का प्रयोग किया है। संस्कृत के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है किंतु वंदना और प्रार्थना के प्रकरणों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र मिश्रित अवधी का स्वारस्य ही दिखाई पड़ता है। क्रियापद अधिकतर अवधी तथा व्रजभाषा के और कहीं-कहीं खड़ी बोली के भी हैं। फारसी और उर्दू के शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर हैं। इसमें अवधी की ग्रामीणता में संस्कृत की प्रांजलता ने भाषा को शक्तिशालिनी तथा अभिव्यक्ति के उपयुक्त सक्षम बना दिया है। अवधी के प्रबंधकाव्यों के चिरपरिचित दोहों तथा चौपाइयों का प्रयोग इन्होंने भी किया है। इन्होंने चौपाइयाँ नहीं द्विपदियाँ लिखी हैं। मात्राओं की संख्या तो चौपाइयों की भाँति है पर चरण उनमें दो ही हैं।

अतः 'प्रेमरत्न' के रचयिता को लेकर जो भ्रम साहित्यान्वेषकों ने खोजविवरणिकाओं से फैलाया उसका निराकरण अब हो जाना चाहिए। अब उन्हीं खोजविवरणिकाओं से यह सिद्ध है कि यह रत्नकुँवरि की रचना है, किन्हीं रत्नदास या रत्नकवि की नहीं। 'रत्नकुँवरि' का नाम कृष्णकाव्य की प्रबंधपरंपराओं को समृद्ध करनेवाले कवियों में विशिष्ट हैं। इनका 'प्रेमरत्न' काव्य भावोत्कर्ष की दृष्टि से एक अनुपम खंडकाव्य है।

*

हिंदी और मलयालम में समान पुर्तगाली शब्द

[वेळ्ळायणि अर्जुनन्]

पुर्तगाली लोग और भारत

यूरोप से भारत आनेवाले सर्वप्रथम लोग पुर्तगाली थे। वे पंद्रहवीं शती के सबसे अधिक साहसी नाविक थे। उनकी व्यावसायिक तथा धार्मिक गतिविधियाँ अंग्रेजों के आने के समय तक भारत में पनप चुकी थीं। इस कारण भारत की सभी भाषाओं में अंगरेजों के आगमन के पूर्व ही पुर्तगाली भाषा के असंख्य शब्द घुलमिल गए थे। पंद्रहवीं शती से प्रारंभ होनेवाले सांस्कृतिक पुनर्जागरण का भारत में बीजवपन करनेवाले भी वस्तुतः पुर्तगाली ही थे। खेती एवं व्यावसायिक और सामाजिक विकास के क्षेत्र में उनकी देन महत्वपूर्ण थी।

१. सामाजिक संबंध

भारतीय जनता से एकात्म होने के लिये अन्य किसी विदेशी जाति ने इतना प्रयत्न नहीं किया था।[1] भारत के श्रेष्ठ आर्यवर्ग के लोगों से वैवाहिक संबंधों को बढ़ाने में उनको किसी प्रकार की हिचक नहीं थी, वरन् उसको एक आवश्यक तथ्य मानकर चलने की सहिष्णुता भी उनमें वर्तमान थी।[2] पुर्तगाल से भारत भेजे गए राज्यपालों में आलबुकर्क का विशिष्ट स्थान है। उसी ने भारतीयों से वैवाहिक संबंध स्थापित करने की सफल नीति विशेषरूप से अपनाई थी।

१. 'देयर इज नो कोलोनियल नेशन ह्विच हैज लेस रेशल इक्रोटिज्म ऐंड इज मोर इन्क्लाइंड टु आइडेंटिफाइ इटसेल्फ विद् इंडिजिनस पापुलेशन दैन द पोर्चुगीज।'—इंफ्लुएंस आव पोर्चुगीज वोकेबुलस इन एशियाटिक लैङ्ग्वेजेज, एम० एस० आर० दाल्गदो, अनु० ए० एक्स सोरेश, पृष्ठ अठारह।

२. 'द पोर्चुगीज हैव आलवेज बीन इन दिस मैटर वेरी टालरेंट ऐंड दिस इज वन आव द ग्रेट क्वालिटीज आव कालोनाइजर्स ऐंड दे उड नेवर थिंक इट ए डिस्ग्रेस टु कंट्रैक्ट मैरेज एलायंसेज विद द हाइ कास्ट्स आव इंडिया, द पीपुल विद द प्योरेस्ट आर्यन ब्लड इन देयर वेंस'—ग्रेशिया दा ओर्ता इ उ स्यु तेंपो—कोंदे दे फिकालो, पृ० १६१।

उसका विश्वास था कि पूर्वी और पश्चिमी देशों के बीच मैत्रीसंबंध बनाए रखने के लिये शासकों और शासितों के बीच यह सामाजिक गठबंधन बहुत ही अनिवार्य है और कोरे साम्राज्यवाद से विशेष लाभ नहीं है।[३]

२. धार्मिक कार्यक्रम

केवल व्यावसायिक और सामाजिक संबंधों के जुड़ने मात्र से पुर्तगाली लोग संतुष्ट नहीं थे। ईसाई धर्म के प्रचार - प्रसार के लिये भी उन्होंने जीतोड़ मेहनत की थी। उनका इरादा तो धर्म के माध्यम से अपनी संस्कृति को भारत में कायम करना था। अन्य सभी कामों से बढ़कर उन्होंने धार्मिक कार्यकलापों को प्राधान्य दे रखा था।[४]

मिशनरियों के इस प्रकार के धार्मिक प्रयासों का इतिहास वस्तुतः पुर्तगाली भाषा के भारत में प्रचार के इतिहास से भिन्न नहीं।[५] देशी भाषाओं में पुर्तगालियों के धार्मिक ग्रंथों का रूपांतर करना आरंभ होते ही पुर्तगाली शब्द भारतीय भाषाओं में घुसने लगे थे।

३. व्यावसायिक संबंध

भारत के लिये कई सर्वथा नवीन उपकरण और गृहस्थी की कई चीजें पुर्तगालियों के द्वारा भारत में लाई गई थीं। वे वस्तुएँ व्यापार के उद्देश्य से भारत में लाई गई थीं। मेज, अलमारी, सोफा, इस्त्री, कारबन, तौलिया, पीपा बाल्टी, वायलिन, आदि घरेलू वस्तुएँ पुर्तगालियों की ही देन है।

३. 'द डिसर्निंग माइंड आव अलबुकर्क फाउंड नो बेटर मीन्स आव मीटिंग टुगेदर द ईस्ट ऐंड द वेस्ट ऐंड कंसालिडेटिंग द एंपायर ह्विच ही वाज फाउंडिंग दैन बाइ फ्यूजन आव द कांकरर्स एंड द कांकर्ड ऐंड टुवर्ड्स दिस एंड ही कांट्रिब्यूटेड आल हिज एफर्ट्स।'

—एम० एस० आर० दालगदो, पृ० अठारह।

४. 'द पोर्चुगीज कालोनाइजर्स इन प्रिफरेंस टु आल अदर मेथड्स मेड यूस आव रेलिजस प्रोपैगैंडा ऐज द मोस्ट एफेक्टिव ऐंड एंड्योरिंग वे इन इंट्रोड्यूसिंग देयर कल्चर।' – वही, पृ० उनतीस।

५. 'द हिस्टरी आव द स्प्रेड आव पोर्चुगीज मिशनरी ऐक्टिविटीज इज इन ऐन ईकल मेजर, अप टु सर्टेन प्वाइंट द हिस्टरी आव् डिफ्यूजन आव पोर्चुगीज लैंग्वेज।'—वही।

४. कृषिपरक संबंध

पुर्तगाली लोग भारत की खेती के मामले में भी ध्यान दिया करते थे। यूरोप से कई प्रकार की नई नई तरकारियाँ और वनस्पतियाँ, फल आदि उनके द्वारा भारत में लाए गए। अनन्नास, काजू, बैंगन, संतरा आदि चीजों के भारत आगमन की कथा भी यही है। विशेष किस्म के आम भी वे भारत में लाए।[६]

पुर्तगालिओं के भारतीयों के साथ इस बढ़ते संबंध ने पुर्तगाली भाषा को भारतीय जनजीवन में आत्मसात् होने का अवसर दिया। ईस्वी सन् १४९७ में वास्कोडिगामा के नेतृत्व में पुर्तगालियों की एक टोली मलाबार के कालिकट में उतरी थी। उसके बाद उन्होंने १५१० में गोआ और १५१७ में बंगाल, डामन व ड्यू पर अधिकार जमाया। इसके साथ साथ उनकी ताकत बढ़ गई। इस परिस्थिति में पुर्तगाली भाषा का भारतीय भाषाओं पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

पुर्तगालियों का प्रारंभ मे केरल और बाद में बंगाल, गोआ आदि जगहों में अड्डा जमाने के कारण हिंदी में पुर्तगाली शब्दों का समावेश, बँगला, मराठी, मलयालम आदि भाषाओं के संपर्क के कारण ही रहा होगा। प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक डा० उदयनारायण तिवारी[७] का यह अनुमान कि हिंदी में पुर्तगाली शब्दों का समावेश बंगला के माध्यम से हुआ, समीचीन ही लगता है।

डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या[८] के अनुसार बंगला में सौ के करीब पुर्तगाली शब्द प्रचलित हैं। डा० दालगदो[९] ने बताया है कि हिंदी में व्यवहृत पुर्तगाली शब्दों की संख्या ४८ है। परंतु डा० कैलाशचंद्र भाटिया[१०] ने उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि ६६ के लगभग पुर्तगाली शब्द हिंदी में प्रयुक्त होते हैं। इनमे से कई शब्दों का संक्रमण मराठी और दक्षिणी भाषाओं के माध्यम से हिंदी में हुआ हो, यह संभव है। पुर्तगालियों का सीधा संबंध दक्षिण भारत से होने के

६. द एक्सेलेंस आव द गोआ मैंगोज इज स्टेटेड टु बी द केयर ऐंड स्किल आव द पोर्चुगीज जेसुइट्स'—हाब्सन-जाब्सन, अंडर मैंगो।

७. हिंदी भाषा का उद्गम और विकास—डा०उदयनारायण तिवारी,पृ० २१६।

८. दि ओरिजिन ऐंड डेवलपमेंट आव् बंगाली लैंग्वेज (१९२६)—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ० २१४।

९. इन्फ्लुएंस आव् पुर्तगीज वोकेबिल्स इन एशियाटिक लैंग्वेजेज—दालगदो, पृ० ४२९–३०।

१०. हिंदी में प्रयुक्त पुर्तगाली शब्द - डा० कैलाशचंद्र भाटिया, अभिनव भारती, वर्ष १, अंक १, पृ० ६–१२।

कारण तमिल, तेलुगु, कन्नड़, और मलयालम में बहुत अधिक पुर्तगाली शब्द पाए जाते हैं। सबसे अधिक संख्या में पुर्तगाली शब्द मलयालम भाषा में पाए जाते हैं।'[१२] पुर्तगालियों का भारत के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा केरल से अधिक संपर्क रहा था, इस कारण से ही मलयालम में इतने अधिक पुर्तगाली शब्दों का समावेश हो गया है, ऐसा दालगदो[११] का कथन है। अतः केरल में पुर्तगीज और मलयालम के संपर्क की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन इस दिशा में बहुत ही अनिवार्य है।

पुर्तगीज और केरल

१४९७ में वास्कोडिगामा के कालिकट (मूल नाम कोषिकोट) पहुँचने के बाद केरल में पुर्तगालियों का इतिहास प्रारंभ होता है। पहले उनका उद्देश्य केवल व्यापार था, परंतु बाद में साम्राज्य स्थापित करना भी उनका लक्ष्य हो गया। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये उन्होंने दो तीन तरीके अपनाए। पहला कार्य जो उन्होंने किया, वह था स्थानीय सामंतों और शासकों के पारस्परिक झगड़ों में दखल देना और किसी एक का पक्ष ग्रहण कर दूसरे को हराना और इस तरह अपनी शक्ति एवं प्रभाव को बढ़ाना। इससे उनको भारतभूमि पर स्वत्व भी प्राप्त होता था। उनका दूसरा कार्य था ईसाई धर्म का प्रचार और उसके द्वारा देश की संस्कृति पर गहरा असर डालने का प्रयत्न। उनका तीसरा उद्देश्य स्थानीय लोगों से विवाहसंबंध स्थापित कर पुर्तगाल के समर्थकों की एक नई पीढ़ी को जन्म देना था। किंतु परिस्थितियों के अनुकूल न होने के कारण स्थायी रूप से अपना अधिकार जमा सकने में इन सभी तथ्यों ने उनका साथ नहीं दिया परंतु फिर भी 'दो से अधिक शताब्दियों तक कायम रहनेवाले उनके संपर्क ने केरल के सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास पर अमिट छाप छोड़ी है। भाषा और

११. दालगदो इंफ्लूएंस आव् पुर्तगीज वौकेबिल्ज इन एशियाटिक लैंग्वेजेज नामक शोधग्रंथ में कहते हैं कि मलयालम में २६१ पुर्तगीज शब्द प्रचलित हैं (पृ० ४८८ ४६०)। अपने 'केरळ भाषाविज्ञानीयम्' नामक ग्रंथ में डा० गोदवर्मा ने स्पष्ट किया है कि कालांतर में इनमें से कई शब्द लुप्तप्राय हो गए और अब केवल १५० पुर्तगीज शब्द ही मलयालम में चालू हैं। इनमें आधे से अधिक शब्द हिंदी में प्रयुक्त नहीं होते (पृ० २०६)।

१२. "दिस एक्सपेंशन आव द पोर्चुगीज लैंग्वेज ओवर मलाबार ड्यूरिंग द पास्ट सेंचुरीज इज एस्टाउंडिंग।"—इंफ्लूएंस आव पोर्चुगीज वाकेबुलस इन एशियाटिक लैंग्वेजेज—दालगदो, पृ० बत्तीस।—

साहित्य के विकास के लिये भी यह सब सहायक सिद्ध हुआ है।[13] इन तथ्यों के कुछ पहलुओं पर विचार करना यहाँ समीचीन लगता है।

आरंभ में ही पुर्तगालियों ने केरल के कई केंद्रों में अपना अधिकार जमाया था। स्थानीय शासकों के पारस्परिक झगड़े में भाग लेकर धार्मिक फूट पैदा कर विजय प्राप्त करना इनकी एक नीति थी।[14]

कोषिकोट के सामूतिरि (कालिकट के राजा सामूतिरि कहलाते हैं) के साथ पहले उनका झगड़ा हुआ तो भी कोलत्तिरि[15] और कोच्चि के राजाओं से उन्होंने स्नेहसंबंध स्थापित किया। सामूतिरि और कोच्ची के बीच जो संघर्ष चल रहा था, उसने कोच्ची को पुर्तगालियों के चंगुल में फँसाया। इस तरह कोच्ची में उनका अड्डा जम गया। इसके अनंतर देशिंगनाडु[15] वेणाडु[15] आदि छोटे छोटे राज्यों से भी उन्होंने मित्रता बढ़ाई। काली मिर्च इलायची, अदरक आदि चीजें इकट्ठा करने के लिये और उनके व्यापारिक संबंध चलाने के लिये वे गावों मे घूमा करते थे। वहा के सामंतो और छोटे छोटे नरेशों से भी उनका संपर्क बढ़ गया।[16] इस बीच कोल्लम् और कोच्ची में उन्होंने अपने किले भी बनवाए। जहाँ जहाँ उनका वश चला, वहाँ पर धर्म का प्रचार, गिरजाघर एवं मिशिनारी की स्थापना आदि करने में उन्होंने कुछ कसर नहीं उठा रखी। कन्याकुमारी से कोच्ची तक के समुद्र तट के इलाकों मे अनगिनत लोगों को उन्होंने ईसाई धर्म में मिलाया।[17]

पुर्तगालियों की इन करतूतों ने एक नए सांस्कृतिक समन्वय के लिये मार्ग प्रशस्त किया। देशवासी कई बातो मे विदेशियों का अंधाधुंध अनुकरण करने लगे। लड़ाई के तौरतरीके ही सबसे पहले अनुकरण के कार्य बने। पुर्तगालियों की

१३. आधुनिक मलयालम-साहित्यम्—पी० के० परमेश्वरन नायर, पृ० १०१।

१४. "दे (पोर्चुगीज) यूज स्किलफुली द टेक्नीक आव इंटरवेंशन इन लोकल डिस्प्यूट्स बाइ साइडिंग विद वन लोकल पार्टी आर ऐनदर ऐंड फ्रेंड अपौन द रेलिजस डिफरेंसेज आव हिंदूज ऐंड मुस्लिम्स व्हेन एवर दे कुड।" -- द इंडियन हेरिटेज प्रो० हुमायूँ कबीर, पृ० २२।

१५. सत्रहवीं शताब्दी तक केरल में विद्यमान रहनेवाले छोटे छोटे राज्य। बाद में इनका विलय, तिरुवितांकूर और कोच्ची में हुआ और उसके अनंतर ये संयुक्त केरल प्रांत में मिलाए गए।

१६. कोची राज्यचरित्रम् के० पी० पद्मनाभ मेनोन, पृ० ८४।

१७. मलाबार मेनुएल -- लोगन, पृ० २८४।

नई बंदूकों और तोपों ने केरल की युद्धसंबंधी पुरानी प्रणालियों में आमूल परिवर्तन लाने में मदद की। पुर्तगाली सेनानायकों की देखरेख में यहां के लोग भी लड़ाई की नई तरकीबों का प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे। इस विशेष परिस्थिति में मलयालियों को पुर्तगाली और पुर्तगालियों को मलयालम पढ़ने की बहुत बड़ी जरूरत महसूस हुई।

प्रसिद्ध इतिहासकार स्वर्गीय के० एम० पणिक्कर ने स्पष्ट किया है कि इस तरह भाषा के पारस्परिक अध्ययन का नतीजा यह निकला कि केरल के राजाओं के कूटनीतिक और प्रशासनिक कार्यों का माध्यम पुर्तगाली भाषा हो गई। इससे भी आश्चर्यजनक बात यह थी कि कोच्ची के कई राजा पुर्तगाली भाषा में धारावाहिक रूप में बोल सकते थे।[१८] कुछ समय बाद केरल में आए निहोफ नामक डच राज्यपाल ने लिखा है कि 'चेंपकश्शेरी' के राजा से बातचीत करते समय राजा के पुर्तगाली भाषा में पारंगत होने के कारण उनको किसी दुभाषिए की जरूरत नहीं पड़ी।[१९] एल० एस० एस० ओ० माले[२०] के अनुसार पुर्तगीज लोगों के केरल छोड़ने के बाद भी केरल के स्थानीय राजाओं के बीच पुर्तगाली भाषा कूटनीतिक संबंध का माध्यम बनी रही।

राजनीतिक और व्यावहारिक संपर्क के लिये पुर्तगीज अफसरों के मलयालम पढ़ने के कारण दुभाषियों की संख्या बढ गई। कोल्लम्, कोची, कोषिकोट आदि व्यापारिक केंद्रों के पुर्तगाली लोग उन प्रदेशों की स्त्रियों के साथ शादी करने लगे। उनकी संतानें मलयालम और पुर्तगाली को मिलाकर एक मिश्रभाषा बोलती थीं।[२१] इस सुदीर्घ संपर्क के कारण कई पुर्तगाली शब्द मलयालम में और कई मलयालम शब्द पुर्तगाली में घर कर गए। केरल की बोलचाल की भाषा के एकीकरण और साधारणीकरण के लिये यह संपर्क बहुत ही सहायक हुआ।[२२] भाषावैज्ञानिक दृष्टि से यह संमिलन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

पुर्तगालियों के धार्मिक प्रचार के आंदोलन ने एक गहरा सांस्कृतिक परिवर्तन उपस्थित किया। कैथलिक धर्म के प्रचार के लिये जेस्यूट मिशनरियों ने

१८. मलाबर ऐंड पुर्तगीज — के० एम० पणिक्कर, पृ० २१०।

१९. कोची राज्यचरित्रम् — के० पी० पद्मनाभ मेनोन, पृ० ६३।

२०. माडर्न इंडिया ऐंड दि वेस्ट - एल० एस० एस० ओ० माले, पृष्ठ ४७।

२१. आधुनिक मलयालम - साहित्यम् — पी० के० परमेश्वरन् नायर, पृ० १०३।

२२. साहित्य चरित्र प्रस्थानङ्ङलिलूटे -- प्रो० पी० जे० ग्रुंट्टणी, पृ० ७३७।

धार्मिक पाठशालाओं (सिमिनारी) की स्थापना की। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि सोलहवीं शताब्दी के अंत तक केरल में कोदुंगल्लूर, चेलममंगलम्, वैप्पिनकोट्ट, उदयंपेरूर आदि स्थानों में ऐसी सिमिनारियाँ वर्तमान थीं।[२३] इन धार्मिक पाठशालाओं में पुर्तगाली और मलयालम दोनों पढ़ाई जाती थीं। केरल के कई ईसाई लोग इन पाठशालाओं में धर्मसंबंधी अध्ययन करते थे और पुर्तगाली-मिश्रित मलयालम में धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद करते थे।[२४] इन सिमिनारियों में धार्मिक शिक्षा देनेवाले पुर्तगाली मिशनरी लोग भी मलयालम का अध्ययन करते थे।[२५] यह भाषापरक आदानप्रदान मलयालम भाषा के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय खोलता है। मलयालम की नवीन गद्यशैली के विकास के लिये पुर्तगीज भाषा का संपर्क बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ। साथ ही पुर्तगाली शब्दों के समावेश के कारण मलयालम शब्दभंडार भी समृद्ध हो गया।

इस तरह मलयालम में आए हुए पुर्तगाली शब्द सोलहवीं शताब्दी में सर्वत्र प्रचलित थे। परंतु बाद में उनकी संख्या कम होती गई। कालांतर में कई शब्दों का प्रयोग अदृश्य हो गया। परंतु फिर भी अनेक शब्द आज प्रयोग में लाए जाते हैं। इनमें आधे से अधिक शब्द हिंदी में प्रयुक्त नहीं होते, मलयालम में उनका प्रयोग अब भी होता है। इस कारण आगे हम केवल उन्हीं पुर्तगाली शब्दों पर विचार करेंगे जो हिंदी और मलयालम में समान रूप से प्रचलित हैं।

पुर्तगाली	हिंदी	मलयालम
Agosto	अगस्त	आगस्टु[२६]

२३. मलाबार ऐंड पोर्तुगीज -- के० एम० पणिक्कर, पृ० ११७।

२४. १६०० ई० में मिशनरियों द्वारा लिखा गया 'उदयंपेरूर सूनदोसिले कानोनुकल' नामक गद्यग्रंथ इसका अच्छा उदाहरण है।

२५. ये मिशनरी लोग भारत के अन्य भागों में और विदेशों में भी धार्मिक प्रचार के लिये आया करते थे। इस कारण से मलयालम तथा अन्य द्रविड़ भाषाओं के शब्द अंगरेजी एवं दूसरी भारतीय भाषाओं में स्थान पाने लगे। चुरूट्ट (चेरूट्टु), वेट्टिला (beetle), पंतल (पण्डाल), मांगा (mango) कालिक्को (calico), कालिकट में बना होने के कारण ; परङ्कि (feringhee फिरंगी) आदि कई शब्दों का इतिहास इस दृष्टि से पठनीय है।

२६. अंगरेजी साल का आठवाँ महीना। पुर्तगाली शब्द अगस्तो अंग्रेजी में ऑगस्ट बन गया। परंतु हिंदी और मलयालम में यह शब्द सीधे पुर्तगाली से ही प्रचलित हुआ।

Achar	अचार	{ अचार । अचारूँ, अच्चारूँ[२७]
Ananas	अनन्नास	अनन्नासुँ, अनन्नासु[२८]

२७. इस शब्द को मलय भाषा का भी माना जाता है, पर मलय से पूर्व यह पुर्तगाली में मिलता है। मलयालम में यह शब्द सार्वजनिक हो गया है। उदाहरण:— १—नारङ्ङा अचारूं मोरूं उराटेकिल् ऊणु केममायि। (बोली)
२—नल्ल नेल्लिक्क अचारूं आरोग्यत्तिनु नल्लताणु। (बोली)

२८. वास्तव में यह एक अमरीकी शब्द है। अमरीका के पेरू, ब्रजील आदि राज्यों में 'ननस' या 'नना' शब्द पाइन एप्पिल के लिये बहुत पहले ही प्रयुक्त होता था। दालगादो साहब लिखते हैं—"इट इज ऐन अमेरिकन वर्ड (द पेरुवियन 'ननस' एकार्डिंग टु कैंदिदो दे फिग्युइरेदो, बट एकार्डिंग टु यूल ऐंड बर्नेल, ब्रजीलियन 'नना' आर 'ननस', इंट्रोड्यूस्ड बाइ पोर्चुगीज इनटु द ईस्ट टुगेदर विद द प्लांट।"—इन्फ्लुएंस आव पोर्चुगीज वोकेबुल्स इन एशियाटिक लैंग्वेजेज, पृ० १७।

सर जार्ज वाट् का मत भी यहाँ उल्लेखनीय है "द स्पेनियर्डस काल्ड इट 'पिनस' बिकाज आव् इट्स रिजेंब्लेंस टु द पाइन-कोन, बट द पोर्चुगीज अडैप्टेड टु देयर ओन टंग इट्स ब्रजीलियन नेम 'ननस' ऐंड काल्ड इट 'अननस,' ए वर्ड ह्विच इन सम फार्म आर अदर हैज एकांपेनीड द प्लैंट थ्रू आउट द वर्ल्ड।"—द कमर्शल प्रॉड्यूसेज आव् इंडिया, भा० १, पृ० २३६।

इतिहास से पता चलता है कि बादशाह जहाँगीर के जमाने में अनन्नास बहुत मशहूर हुआ था। जहाँगीर की डायरी में इसका उल्लेख मिलता है—"आइ शैल मेंशन वन् फ्रूट इन पर्टिकुलर, द 'अनानास' (पाइन ऐपुल) वीइंग एमंग द मोस्ट डेलिशस आव् दोज विच्अर्ड इन द आइलैंड आव् फ्रेंगइर्स (पोर्चुगीज), आव् फ्रूट दिस सेम गार्डेन हैज बीन नोन इन ए सीजन टु हैव प्रोड्यूस्ड निअर्ली वन हंड्रेड थाउजेंड।"—मेमायर्स आव् द एंपरर जहाँगीर, अनु० मेजर डेविड प्राइस, कलकत्ता, १९०४, पृ० २२।

मलयालम में अनन्नास का दूसरा नाम पुर्त्तिच्चक्क है जिसका अर्थ है पुर्तगाल का कटहल या फल।

Amen	अमीन	आमीन्, आम्यन्[१९]
Almario / Armario	अलमारी, आलमारी	अलमारि, अलमार[२०]
Hospital	अस्पताल	आस्पत्रि, आशुपत्रि[२१]
Aia	आया	आय[२२]
Alfinete	आलपिन	आल्प्पिन्नु, पिन्नु[२३]

१९. मलयालम में इस शब्द के अर्थ में थोडा बहुत परिवर्तन हुआ है। टैक्स वसूल करनेवाला छोटा कर्मचारी (टैक्स कलक्टर) अर्थ में 'अमीन' या 'आम्यन' शब्द मलयालम में प्रयुक्त होता है। हिंदी में यह न्यायालय का वह कर्मचारी है जो बाहर का काम करता हो, जैसे कुर्की करना, भूमि नापना, किसी स्थानविशेष का निरीक्षण करना आदि। इस शब्द को अरबी भाषा का भी माना जाता है।

२०. १–ओरू कण्णाटि अलमार निरये पुस्तकङ्ङल। सी० वी० रा०, पृ० २१०।

२–वलियोरू इरुम्पु अलमारि आ मुरियुटे मूलथिल् वच्चिट्टुण्टु। मौ० च० च०, पृ० १३।

२१, इसकी व्युत्पत्ति अंगरेजी 'हास्पिटल' शब्द से मानी जाती है। पर, ऐसा हो सकता है कि यह पुर्तगाली से सीधे अंगरेजी में आया हो। उदाहरण, १–तिरुवनन्तपुरत्ते जनरल् आशुपत्रि प्रवेशिप्पिच्चिरिक्कुन्नु।

-- के० कौ०, १० मार्च १९६२।

२--कण्णास्पत्रियक्कु अटुत्ताणु अद्देहं तामसिक्किरुन्नतु। — जी० स०, पृ० ७?।

२२. १--कुट्टिकले आयये एल्प्पिच्चिट्टु माधवि आप्पीसिलेक्कु पोयि। - च० का०, पृ० ३४।

२--अरुपेयेक्काल् आययोटु एनिक्कू कटप्पाटुण्टु। कू० म० पृ०, ९७

२३. मलयालम में 'पिन्नु' शब्द अधिक प्रचलित है। पहले अल्पिन्नु का प्रयोग किया जाता था, पर कालांतर में आल् लुप्त हो गया और केवल पिन्नु उसी अर्थ में चलने लगा। जैसे, कटलासिल ओरू पिन्नु कुत्ति वच्चु। (बोली)

Ata	आत	आन्त[34]
Estirar	इस्त्री	इस्तिरि, इस्त्रि[35]
Coronal	कर्नल	केणाल्[36]
Caju	काजु	काजु, कशु[37]
Casa	काज	कास[38]
Carabine	कारबन	कारबण[39]

३४. शरीफा, सीताफल के लिये 'आत्त' शब्द मलयालम में प्रयुक्त होता है। आजकल इसे 'आत्तक्का' या 'आंतच्चक्का' भी कहते हैं। का (काय्) का अर्थ है फल। गांवों में आत्तिक्का भी कहते हैं। जैसे—१--मुल्लुल्ल आत्तिच्चक्क। २--नल्ल पपुन्त आत्तच्चक्क।

३५. अच्छन् इस्तिरि तेच्चु कोडिलयाक्किय काक्कि ट्रौसर इट्टुकयायिरुन्नु।—जयकेरल, १८--११--१९६१, पृ० २६।

३६. केणाल् गोदवर्म्म राजायुटे अध्यक्षतयिल्।—के० कौ०, १५ अप्रिल, १९६२। डा० चटर्जी इसका संबंध अंगरेजी कौलोनल से मानते हैं।—बंगला भाषा का उद्गम और विकास, पृ० २२४।

३७. तमिल में इसे 'काशुपलम' कहते हैं। पुर्तगीज इन्फ्लुएंस रिवील्ड बाई तमिल वर्ड्ज़।—प्रो० टी० पी० मीनाक्षी सुन्दरम्, अण्णमलाई यूनिवर्सिटी जर्नल, भाग १६, पृ० ११-५। मलयालम में कशु अण्टि अधिक प्रचलित है। पुर्तगीजों द्वारा लाए हुए फल अर्थ में परंकिअण्टि (फिरंगी का फल) भी कहा जाता है।

३८. बटन का घर, कुरते आदि का वह छेद जिसमें बटन फंसाया जाता है, इत्यादि अर्थों में कास (kasɪ) शब्द मलयालम में चलता है। दर्जियों के बीच यह शब्द खूब प्रचलित है। जैसे तय्यल पठिक्कुन्नतिन्टे आद्यन्ते पटि कास वरियल् आणु। डिबिया का गिलाफ अर्थ में भी यह शब्द प्रयुक्त होता है। जैसे वेळ्ळिक्कास (चाँदी की डिबिया)।

३९. शेक्सपीयर ने इसे फ्रान्सीसी भाषा से माना है। हिंदुस्तानी डिक्शनरी, १८९६, पृ० १२७८। एसुन्तिराटे ओरू कार्बण काम्पि तय्याराक्कि।—म० रा० बा०, पृ० १६, अगस्त ११, १९६२।

Cooh	कोच	कोच्चु[४०]
Capitao	कप्तान	कप्पित्तान्[४१]
Christao	किरस्तान	क्रिस्त्यन्[४२]
Camar	कमरा	क्यामरा[४३]
Catolico	कैथोलिक	कत्तोलिक्कन्[४४]
Camisa	कमीज	कमीस्सु, कम्मीस्सु[४५]

४०. डा० चटर्जी 'बंगाली भाषा का उद्गम और विकास' में इसका संबंध अंगरजी कोच से मानते हैं।

कन्याकुमारीथिलेक्कुलल प्लपर कोच्चि अवर यात्र चेय्तु।

४१. जहाज का अफसर, जहाज चलानेवाला आदि अर्थों में कप्पित्तान शब्द मलयालम में बहुत अधिक प्रचलित है।

१–डिल्लनायि एन्न कप्पित्तान्।—लि० च०, पृ० ४३।

२–आ कप्पलिले कप्पित्तान् ओरू पोलयट्टुकारनायिरुन्नु। व० पु०, पृ० ५१।

३–कप्पित्तानिल्लातेपु कप्पलेन्नतुपोले।—प० प० कृ०, भा० १, पृ० ४६।

४२. १६वीं सदी के आरंभ से इस शब्द का प्रयोग मलयालम में मिलता है। उस जमाने के पुर्तगाली पादरियों द्वारा लिखे हुए धार्मिक ग्रंथों में क्रिस्तियन (क्रिस्त्यन) शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसे—उदयंपेरूरिले क्रिस्त्यन मिषनरिमारूटे ओरू योगं कटि।—उदयपेरूर सनहदोसिले काननुकल, १६१७, पृ० ५१।

२–मलंकरयिले क्रिस्त्यानिकल मुषवन्।—व० पु०, पृ० ५०।

४३. ओरू क्यामरयुं तोलिलिट्टु तोट्टु वक्कराकटे जोसफ नटन्नु वोलुकयायिरून्नु।—वि० क०, पृ० ६३।

४४. १–कत्तोलिक्करूटे संख्य इविटम्ते जनसंख्ययिल ओट्टु मोशमल्ल।—के० कौ०, १० मार्च, १९६२।

२–ओरू कत्तोलिक्कन्टे मनोभाव।—चै० मु०, पृ० ३७।

४५. एस० के० पोट्टकाट्टु पी० सी० कुट्टिकृष्णन आदि प्रसिद्ध मलयाली कहानीकारों की अनेक कहानियों में कमीस्सु शब्द का प्रयोग मिलता है। उदाहरण—

१–नील कम्मीस्सुं वेल्ल पैजामयुं इट्ट अवल् ओरू पंजाबी पेण्णायिरिक्कुमेन्नु गान करूति।—च० का०, पृ० ७१।

२–कम्मीस्सुं कालुरथुं पट्टाणिकललले धरिक्कुन्नतु।—शारदा०, भा० १, पृ० ३६।

Cruz	क्रूस	कुरिश्शु, क्रूश्शु[46]
Couve	कोबी, गोबी, गोभी	गोबि[47]
Chave	चाबी	चावि[48]
Chapa	छाप	चाप्प[49]
Janela } janella }	जंगला	जन्नल्[50]
Tabaco	तबाकू	तम्पाक्कु, तम्पाक्कुँ[51]

४६. १–मृकमार्गोकिलु मुच्चन्तिलु वरिप्पंक्कु एकशुखमां कुरिशिने मुन्नुवान् । –ओ० कु , पृ० ८८ ।
२ पात कामिक्कुं कुरिशे जयिक्कुक ।—ओ० कु०, पृ० ८६ ।

४७. १–गोबि कोण्टुल्ल चर्टाणि रसमायि तोन्नि ।—अ वा०, पृ० ७१ ।
२–गोबि, तक्कालि, गुट्टक्कोस तुटंगिय शीम मलक्करिकल् ।—कृ० शा०, पृ० २१ ।

४८. १–वष्टिच्चक्कन्तिन्टे चावि ऊरि वांगु ।—कू० म०, पृ० १७ ।
२–सैकिळिन्टे चावि । (बोली)

४९. मलयालम इंग्लिश डिक्शनरी, डा० गुंडर्ट, पृ० ३५२ ।
२–चाप्प इटुक, चाप्प अटिक्कुक आदि ।

५०. १–जन्नलिन्नपिकलिलु वन्नलक्कुन्न नित्यं ।–प० प० कृ०, भा० १, पृ० ३१ ।
२–जन्नलिलूटे निलाविटे नतुन्न रश्मिकल उन्नुं वांगु कोण्टिरून्नु ।—अ० वा०, ६४ ।

५१. मलयालम में तम्पाक्कु या तम्पाक्कुँ एक सार्वजनिक शब्द है। इसे पुकयिला भी कहते हैं। इस शब्द को अंगरेजी का भी माना जाता है, पर अंगरेजी के आगमन से पूर्व यह मलयालम में प्रयुक्त होने लगा था—
१–नल्ल आफ्ना तंपाक्कु कोण्टोरु सुखमायि मुरूकिक ।—आ०, पृ० ५८ ।
२–तम्पाक्कु व्यवस्मायं आविटे वलरे वर्लान्निट्टुण्टुं ।—म० ना०, पृ० ३१ ।
१६ वीं सदी में भारत के संबंध में पाश्चात्यों द्वारा लिखी गई ऐतिहासिक पुस्तकों में भी इसका उल्लेख मिलता है—
१–"द रेवरेंस फ्राम टबाको (इन हाल) इज नाइन थाउजेंड सेवन हंड्रेड ऐंड थ्री पत्ताकोज पर इयर ।"—अंतोनिओ बकारो (१६१४), गोव्होन दे तिसूरो. चार, पृ० ३३ ।

Toalha	तौलिया	तूवाल[52]
Leilao	नीलाम	लेलम्[53]

२–"ड्रिंकिंग पाम-वाइन ऐंड यूजिंग तबाको फार स्मोकिंग।"—फ़तालिदा दे हिस्ट, बुक फर्स्ट, अध्याय १६ जोआओ रिबेई रो।

३–"द यूस आव् टोबैको स्प्रेडइन इंडिया ड्यूरिंग द रेन आव् द एंपरर अकबर (सिक्सटींथ सेंचु०)। इट वाज इंट्रोड्यूस्ड इनटु इंडिया, इन आल प्रोबैबिलिटी बाइ द पोर्चुगीज।"—इन्फ्लुएंस आव् पोर्चुगीज वोकेबुलस इन एशियाटिक लैंग्वेजेज, एम० एस० रूदोल्फो दलगादो, पृ० ३३४।

३. "देयर इज ऐनदर ट्री काल्ड 'पपइरा' ह्विच प्रोड्यूसेज फ्रूट ह्विच गोज बाइ द नेम आव् 'ममोज' इन अमेरिका, ऐंड आव पपैयाज' हियर।"—फ्र० लकेमेंके दा रे सुरिकाओ, भा० दो, पृ० ३११।

४. 'इन द प्लेस आव् वाइन आव् ह्विच एज आइ हैव सेड, देयर इज नन, तबाको, ह्विच वी काल हर्वा सैंता इज यूज्ड, टु इट हैव बीन ऐट्रीब्यूटेड थ्रू आउट द इडीज सो मेनी वर्चुज, आई कैनौट से वेदर रियल आर इमैजिनरी, ऐंड स्पेशली टु द काइंड दैट ग्रोज इन दिस आइलैंड।"—हिस्ट-टू जिकी-मेरिट, भा० चार, पृ० ५४; गैस्पार अगों सो १५६५)।

५२. १–पट्टु तूवाल कोण्टु अवल् मुखं तुटच्चु।—अ० वा०, पृ० २७।
२–तूवाल-तुम्पालोमलेन्नंगमेल्लां मेल्ले।—इ० प० क्र०, पृ० ३८।

५३. लेलम् शब्द मूल पुर्तगाली शब्द से बहुत मिलता जुलता है। १६ वीं और १७ वीं शतियों में मलयालम ग्रंथों में इसका प्रयोग मिलता है। आजकल बोली और अखबारों में भी ज्यादा प्रयुक्त होता है।

१–गवर्मेंटु लेलं चेय्युन्न साधनंगल।—के० कौ०, ६ मार्च, १९६२।
२–आफीसिले पपय साधनगल एल्लां लेलं चेय्तु।—मा० भू०, १४ मई, १९६२।

३–"गिल फर्नांदेज दे करवाल्हो रिसीव्ड देम ऐंड सून हैड देम सेट अप इन द मार्केट प्लेस (आव कोचिन) ह्वेयर दे होल्ड लिलाओ (आक्शन)"- दिओगो दो कौतो; दिस० छः-दस-९। (कोटेड इन 'इन्फ्लुएंस आव् पोर्चुगीज वोकेबुलस इन एशियाटिक लैंग्वेजेज)।

Foguete	पटाका	पटक्कु, पटक्कं[५४]
Papaia	पपीता, पपैया	पप्पक्क, पप्पायं[५५]
Pipa	पीपा	वीप्प[५६]
Pistol	पिस्तौल	पिस्टोल[५७]

५४. १-दीपावलि दिवसं आकयाल् कुट्टिकल पटक्कं पोट्टिच्चु रसिक्कुकयाणु।—का० क०, पृ० ४१।

२-एरिप्पटक्कु मालप्पटक्कु एल्लां शेखरिच्चु। रे० वा०, पृ० ५१।

३-ह्वाट थ्रियू मोस्ट आव् देम इन्टु कन्फ्यूजन बेयर द 'फोग्युट्टेस' एँड फायर बॉक्स ह्विच द टर्क्स यूज्ड ऐट द फर्स्ट आन रश।'' जोआओ दे बरॉस, चार-सात-१२।

५५. मलयालम में 'पप्पक्क', 'पप्पायं' दोनों रूप चलते हैं। जैसे—

१-पकुन्त पप्पक्का नल्ल जीवकांशमुल्ल ओरू फलमाणु। आ० र०, पृ० ४३।

२-पप्पायं कोण्टुल्ल तोरन् रूचिकरमाणु।—कु० शा०, पृ० १७।

५६. केरल के जनपद ग्रामीणों के बीच भी वीप्प शब्द का प्रयोग होता है।—

१-कीलु वच्चिट्टुल वलिय वीप्प। (बोली)

२-वीप्पयुटे इरूम्पु वलयङ्ङल्।—आ० मों० व०, पृ० २७।

कुछ पश्चिमी इतिहासकारों ने भी पीपा का उल्लेख किया है—

१-''फार ए पोर्चुगीज नाट टु विश टु पे फार द ट्रांस्पोर्ट आव् 'पीपा' आव् वाइन।''— दमिआओ दे गोए, मैनुअल चार, पृ० १८।

२-''ही हैंडेड ओवर द कूपर्स वर्क शाप टु फ्रांसिस्को दे मेलो पेरेरा, सो दैट ही माइट गेट हिम टु टर्न आउट बैरेल्स, लार्ज उडेन बाउल्स, पीपाज।''— दि ओगो दो कोर्तो, डिस० ४, आठ ५।

५७. इस शब्द को अंगरेजी भाषा का भी माना जाता है।

१-वन्टे कथ्यिलिरून्न पिस्टोलिन्टे निर ओषिच्चु।—ने० जी० सा०, पृ० ३१।

२-आत्मरक्षार्थं अविटे एल्लावरूं पिस्टोल कोण्टु नटक्कारूण्टु।—पु० लो०, पृ० ५३।

Padre	पादरी	पातिरि[५८]
Verruma	बरमा	वरूम, वर्म्म, वेरूम[५९]
Biscoito	बिस्कुट	बिस्वकट्टु, बिस्क्कट्टु[६०]
Botao	बटन	बट्टण्[६१]

५८. १६ वीं शती से यह शब्द मलयालम में प्रयुक्त होने लगा था। १६ वीं शती में पुर्तगाली पादरियों द्वारा लिखे हुए धार्मिक ग्रंथों में इस शब्द का उल्लेख मिलता है।

१–जेस्यूट्टु पातिरिकळ् यूरोप्यन मातृकयिलुळ्ळ सिमनारिकळ् स्थापिच्च। - वेदोपदेश, पृ० २ (१५८)।

२–क्रिस्त्यन पातिरिमारूटे भाषा सेवनं।- क्रि० सा० च०, पृ० १०३।

३–प्रशेंस् पातिरि इंगेरि देशक्कारनायिरुन्नु।— ग्रा० म० सा०, पृ० १११।

मनरिक, फारस्ट आदि यात्रियों ने भी अपने भारत के संबंध में लिखे ग्रंथों में इस शब्द का प्रयोग किया है -

१–"द मोर सो इन दिस केस, सिंस द न्यूज रैट द बोरो 'पाद्रे',' व्हिच इज टु से ग्रेट प्रीस्ट, वाज एराइविंग हैड स्प्रेड थ्रू आउट द होल कंट्री।" – मैं रीके, ट्रैवेल्स, भा० १, पृ० १६२।

२–मेनी फैमिलीज आव् मामिन्य डेली लीविंग दी पोर्चुगीजेज टेरिटरीज एंड रिपेयेरे हिदर (यांबे) फ्राइटेंड बाइ दी 'पाद्रीज', टू अपान दी डेथ आव एनी पर्सन फोर्सेज आल हिज चिल्ड्रेन टु बी क्रिश्चियंस।"— फारेस्ट, होम सीरीज सेलेक्शंस, भा० १, पृ० १२०।

३–"आइ वांट इनटु दी सिटी आव् दायरबिकीर टु विजिट दी 'फ्रेंच पाद्रीज' आव् दी आर्डर आव् सेंट फ्रांसिस, हू रिसीव्ड एंड एंटरटेंड मी विद ग्रेट सिविलिटी एंड रेस्पेक्ट।"– हेजेज डायरी, भा० १, पृ० २३२।

५९. वर्म्म वच्चु तुळच्चु वरूम कोण्टु तुरन्नु। (बोली)

६०. मधुरं उळ्ळ बिस्कट्टुं कुट्टिकळक्कु वलरे प्रियमाणु। (बोली)

६१. यह शब्द भी अंगरेजी का माना जाता है। यह शब्द अंगरेजों के आगमन के पहले ही चलता था या नहीं, इस बात का पता अभी तक नहीं चला है। मलयालम में यह एक सार्वजनिक शब्द है।

१–नैलोण बट्टणुकळ वच्चु पिटिप्पिच्च ओरु कुप्पायं।— च० का०, पृ० ७२।

२–बट्टण् पोलुं स्वर्णमयं तन्ने।—अ० वा०, पृ० १५।

Bispe	बिशप	विषप्पु[६२]
Botelha	बोतल	बॉट्टिलु, बाट्टिल्[६३]
Beringla	बैंगन	वपुतिन[६४]
Mestre	मिस्त्री	मेस्तिरि, मेसिरि[६५]
Marca	मार्का	माक्कु[६६]
Mesa	मेज	मेश[६७]
Arratal	रतल	रातल, रातलु[६८]

६२. १-मर्लकरथिले विषप्पुमारेल्लां अवश्यं अरियेण्टुन्न कार्यं । आ० म० सा०, पृ० १६५ ।
२-विषप्पन्मारुटे साहित्य सेवन ।—क्रि० सा० च०, पृ० ३६ ।

६३. ओरू बाट्टिल मधि, ओरू बाट्टिल मयक्केयया । (बोली)

६४. बैंगन मलयालम में वपुतिनका या वपुतिनंकायू कहलाता है । वपुतिनंकायू कालांतर में वपुतिनंग बन गया है । अनुमान है कि यह शब्द पुर्तगीज का रूपांतर है ।

६५. १-वेलुमेस्तिरि तन्टे उपकरणंगल् एटुन्नुकोण्टु नटन्नु । अ० बा०, पृ० ५० ।
२-तय्यल मेसिरि, कोन्तन मेसिरि । (बोली)

६६. अंगरेजी मार्क से भी संभव है, क्योंकि इसका प्रचार अंगरेजों के आने के पश्चात् अधिक हुआ । आन माक्कु पेंसिल, कुरूवि माक्कु मलमल । (बोली)

६७. १-मेशप्पुरंतु पुस्तकङ्ङल चितरि किटक्कुन्नु ।—भा०, पृ० ४३ ।
२-मेश, कसेर एन्नी उपकरणङ्ङल् । (बोली)

६८. इस शब्द की व्युत्पत्ति अरबी रत्ल से भी हो सकती है । केरल में यह शब्द सर्वत्र प्रयुक्त होता है ।
१-ओरू रात्तल मरच्चीनिक्कु विल रण्टणा । (बोली)
२-रात्तल ओटिनतु एट्टणा निरक्किल् । — क० पु०, पृ० १७ ।
इस शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में दालगाडो का कथन है —
'द एटिमोन इज द अरबिक 'रत्ल' आर 'रित्ल्', व्हिच इन इट्स टर्न, इज सपोज्ड टु बी डिराइव्ड फ्राम द ग्रीक 'लित्र', इट एपियर्स दैट द वर्ड, इन सम आव् द लैंग्वेजेज ऐट लीस्ट, हैज प्रोसीडेड डाइरेक्टली फ्राम पोर्चुगीज''
—इन्फ्लुएंस आव पोर्चुगीज वोकेबुलस०, पृ० २५७ ।

Lenco	लैस	लेसु[६९]
Varanda	वरामदा	वरान्त[७०]

६९. भ्रमात्मक फ्रेंच 'लैस' (las) या अंगरेजी 'लेस' (lace) से भी संभव है। हिंदी में इसका अर्थ कपड़े पर चढ़ाने का सुनहला फीता है, पर मलयालम में यह छोटे तौलिए के लिये प्रयुक्त होता है। उदाहरण—कैलेसु।

७०. इस शब्द के उद्गम के संबंध में अनेक मतभेद हैं। जान् बीम्स्, लिट आदि विद्वानों का मत है कि यह शब्द संस्कृत 'वरंडा' या 'ब्रांडा' से व्युत्पन्न है। परंतु डा० गुंडर्ट इससे सहमत नहीं है। डा० गुंडर्ट, विल्किंसन आदि विद्वानों के अनुसार यह पुर्तगाली शब्द है। दालगदो ने इसको व्युत्पत्ति पर इस प्रकार विचार किया है—

"द ओरिजिन आव् द वर्ड वरांडा आर वेरांडा इज ए सब्जेक्ट आव् ग्रेट कंट्रोवर्सी। जान बीम्स (ह्विट्वर्थ) लिंक्स ऐंड मेनी अदर्स डिराइव इट फ्राम द संस्कृत वरांडा (ब्रांडा) फ्राम द रूट वृ आर वर् टु कवर, टु सराउंड, टु एन्क्लोज। ऐंड दिस वर्ड इज मार्क्ड बाइ बौथलिंक (डिक्शनरी आव् सेंट पीटर्सबर्ग, १८५५, पृ० ७५) कैपेलर ऐंड मोनियर विलियम्स (फर्स्ट एडि० १८७४) ऐज ए प्योर डिक्शनरी-वर्ड, बिकाज इट इज नाट टु बी फाउंड इन एनी संस्कृत बुक्स नोन टिल नाउ। गुंडर्ट ऐड-मिट्स (मलयालम-इंग्लिश डिक्शनरी, फर्स्ट एडि०: १८७२, पृ० ८३२) द पोर्चुगीज सोर्स। विल्किंसन आल्सो ऐट्रीब्यूट्स इट टु पोर्चुगीज ओरीजिन। रिग डिराइव्स इट फ्राम पोर्चुगीज।"—इन्फ्लुएंस आव् पोर्चुगीज वोकेबुलस०, पृ० ३५६-६०।

१६वीं सदी से इसका प्रयोग मलयालम और अंगरेजी में मिलता है—

१—वरान्तयिल वच्चुतन्ने मतपाठङ्ङल् पठिप्पिच्चिरुन्नु। के० क्रि०, पृ० ३।

२—वीट्टिन्टे वारान्तयिल। (बोली)

ग्रोस पिंटो आदि यात्रियों ने अपने विवरण में इसका उल्लेख किया है—

१—"स्माल रेंजेज् आव् पिलर्स वैट सपोर्ट ए पेंट हाउस आर शेड, फार्मिंग व्हाट इज काल्ड, इन द पोर्चुगीज लिंग्वाफ्रेंका 'वेरंडस' ईदर राउंड आर आन पर्टिकुलर साइड्स आव् ए हाउस।"—ग्रोस: ए वायज टु ईस्ट इंडीज (१७५७), पृ० ८४।

२—"ऐंड ही केम टु व्हाइन अस व्हेयर वी हैड बीन पुट इन ए 'वरांडा' व्हेयर देयर वाज ए लार्ज कैंडिल-स्टिक मेड आव् ब्रास दैट गेव अस लाइट।"—फर्नाओ पिंटो: क्रौनिका दे बिसनागा (१५४०), पृ० १०१।

Viola	वायलिन	वयलिन[७१]
Sorte	शर्त	चार्त्त[७२]
Escarlate	सकलात	चकलासु[७३]
Salada	सलाद	सलादु[७४]
Sofa	सोफा	सोफा[७५]

ऊपर विवेचन किये हुए शब्दों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो भारतीय होते हुए भी पुर्तगीज के माध्यम से समस्त भारत में और विदेश में प्रचलित हुए हैं। जैसे – क्युरूबिम् (querubim), क्राबो (cravo),

७१. १–वयलिनिल् निन्नु माद्‌कमाय ओरु गानं ओपुकि कोंषिटरुन्नु। —मा० भू०, १० मार्च १९६३।

२–वयलिन् नल्लोरु संगीतोपकरण आग्नु। (बोली)

७२. इस शब्द को अरबी का भी माना जाता है। (दे० सं० हि० श० सा०, पृ० ९१९) इसमें अर्थ परिवर्तन हुआ है। शर्त का मौलिक अर्थ है, 'ए लाटरी कूपन'—दलगाडो, पृ० ३१। मलयालम में यह इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। परन्तु हिंदी में बाजी कंडिशन आदि अर्थों में चलता है। —सं० हि० श० सा०, पृ० ९१९।

१–चिट्टिदुटे चार्त्तु ! टुक्कुम दिवसं। (बोली)

२–अवलोरु चार्त्तिल चेर्न्नु। (बोली)

७३. हिंदी में कंबल, ओढ़ने की रजाई, मखमली कपड़ा आदि अर्थों में सकलात शब्द प्रचलित है (सं० हि० श० सा०, पृ० ९४५)। शायद यह शब्द अरबी से पुर्तगाली में घुमकर भारत की भाषाओं में आगया होगा। डा० गुंडर्ट इसे पुर्तगाली ही मानते हैं (मलयालम-इंग्लिश डिक्शनरी, पृ० ३३७)। मलयालम में इसका अर्थपरिवर्तन हुआ है। मलयालम में ऊनी कपड़ों को चकलासु कहते हैं।

७४. १–ऊणिनु शेषं कुरच्चु सलाद् कूटे कॉपच्चु।—मा० भू० को० ९ मार्च, १९६२।

२–फलाङ्ङल् कोण्टु सलाद उण्टाक्कानुल्ल विधं। मा० भू० वी०, १३ मई, १९६०।

७५. १–ईट्टिन्तटि कोण्टुण्टाक्किय सोफ। (बोली)

२–सोफयिल मलर्न्नु किटन्नु अवन् वायिक्कुकयाणु। - त्रि० क०, पृ० १३०।

बीटल (beetle), कालचाओ (calcao) आदि। क्युरुबिम मलयालम का 'करूव' नामक एक सुगंधित द्रव्य है जो सिर्फ केरल की सह्याद्रि की तलहटियों में पैदा होता है। पुर्तगीज व्यापारियों ने इसे देश-विदेशों में पहुँचाया था। इसी तरह क्रावो भी केरल का एक प्रसिद्ध सुगंधित द्रव्य है जिसका मलयालम नाम 'ग्रांपु' है। यह इलायची की भाँति सुगंधित होता है। बीटल मलयालम का 'वेट्टिल' है जिसकी गठन 'वेरुं-इल' से हुई है, जिसका अर्थ साधारण या केवल सादा पत्ता है। 'कालचाओ' मलयालम 'कालच्चट्ट' का पुर्तगाली रूपांतर है जिसका अर्थ है काल (पैर) में पहनने का चट्ट' (कुर्ता या वेश या कपड़ा)। दालगदो साइब ने अपने शोधग्रंथ 'इन्फ्लूएंस ऑव् पुर्तगीज वोकेबिल्स इन एशियाटिक लेंग्वेजस्' में इन शब्दों की विस्तृत सूची दी है[७६], पर मौलिक मलयालम रूप का विवरण नहीं दिया है।

इन सभी पुर्तगाली शब्दों ने हिंदी और मलयालम की शब्दावली को बहुत अधिक प्रभावित किया है। इन दोनों भाषाओं में पुर्तगाली शब्द सार्वजनीन और सर्वसाधारण हो गए हैं।

संकेत सूची

१. के० कौ०	केरलकौमुदि (दैनिक पत्रिका)
२. सी० वी० रा०	सी० वी० रामन पिल्ल, (पी० के० परमेश्वरन नायर)
३. मौ० च०	मौलविथु चर्गातभार्य (पी० सी० कुट्टिकृष्णन्)
४. जी० स०	जीवित समरम् (सी० केशवन्)
५. च० का०	चंद्रकातम् (एस० के० पोट्टक्काट्ट)
६. कु० म०	कुम्पट्टुककुन्न मराणु (पी० सी० कुट्टिकृष्णन्)
७. म० रा०	मलयाल राज्यम् (साप्ताहिक)
८. ति० च०	तिरुविताकूर चरित्रम् (ट्रावंकोर सरकार)
९. व० पु०	वर्तमान पुस्तकम् (तोमा कत्तनार्)
१०. प० प० कृ०	पल्लच्चिन्टे पद्यकृतिकल् (पल्लत्तु रामन्)
११. वि० क०	विश कन्यक (पोट्टक्काट्ट)
१२. चै० मु०	चैन मुन्नोट्टु (मुंटश्शेरि)
१३. ओ० कु०	ओटकुपल् (जी० शंकर कुरुप)
१४. अ० वा०	अंतर्वाहिनि (पोट्टक्काट्ट)

७६. पृ० ४८८–९०।

१५. कृ० शा०	कृषिशास्त्रम् (केरल सरकार)
१६. भ्रा०	भ्रान्तालयम् (पी० केशवदेव)
१७. म० ना०	मलयानाट्टुकलिल् (पोट्टक्काट्ट्)
१८. इ० प० कृ०	इटप्पल्लि कृतिकल् (इटप्पल्लि)
१९. मा० भू०	मातृभूमि (साप्ताहिक)
२०. रे० वा०	रेड वालडियर (केशवदेव)
२१. ने० जी० सा०	नेप्पोलियन्टे जीवित सायाह्नम् (पी० के०)
२२. क्रि० सा० च०	क्रिस्तीय साहित्य चरित्रम् (पी० जे० तोमस्)

पौराणिकी

[इस स्तंभ के अंतर्गत ऐतिहासिक महत्त्व की अप्रकाशित मूल सामग्री का प्रकाशन किया जायगा। इस अंक में आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम कुछ पत्र सभा संग्रह से प्रस्तुत किए जा रहे हैं। ऐसी सामग्री इस स्तंभ के लिये आमंत्रित है।]

इन सभी पत्रों में पत्रसंख्या द्विवेदी जी द्वार अंकित है।

[१]

२४६६

श्रीनगर

२०–६–०६

प्रियपण्डित जी महोदय

श्री हरिः

प्रणामाः

महीनों से मैं अपना हाल आपको कुछ नहीं लिख सका। तथापि मेरा अंतःकरण इस भावना में सर्वदा लगा रहा था। कई कारणों से पत्र लिखने में जो मैंने विलम्ब किया है उसे क्षमा कीजियेगा।

जब मैं मुङ्गेर में था और अपने फोड़े होने की बात लिखी थी उसके थोड़े ही दिन बाद मैं बीमार हुआ। बुखार ने हैरान कर डाला। अब तक भी बखूबी ताकत नहीं हुई है परंतु ज्वर अब नहीं होता।

आनन्दमठ की प्राप्ति से आपने जो श्रीमान को धन्यवाद सूचक पत्र भेजा था, उससे आपका कुशल समाचार पाकर मेरे मन की चिंता मिट गयी और इच्छा हुई कि आप को अपनी दुरवस्था का समाचार लिख भेजूँ परंतु अशुभवृत्तांत से किसी सज्जन के हृदय में कष्ट पहुचाना उचित न समझ पत्र लिखने की ओर मेरी प्रवृत्ति न हुई। जिस समय मैं ज्वर से नितांत पीड़ित था उसी समय मेरी माँ श्री वैद्यनाथ जी जाने के लिये मुंगेर तक आयीं। उनकी इच्छा थी कि मुझे अपने साथ वहाँ तक ले चलें पर मैं किसी प्रकार जाने लायक न था। वह मुझे उस अवस्था में देख अत्यंत आर्त्त हुईं और मुझे साथ न लेजाकर जिनके साथ मुंगेर तक आयी थीं उन्हीं को साथ ले श्री वैद्यनाथ गयीं और मुंगेर होकर ही लौटीं। तब तक मैं कुछ अच्छा हो चला था। मुझसे भेंट कर

पत्र खाकी कागज पर लिखा गया है।

वह घर गयीं। परंतु इस अभ्यंतर में घर पर की हालत ही कुछ और हो गयी। बाढ़ के पानी से समूचा गाँव जलमग्न हो गया। समस्तीपुर से बाजितपुर तक बराबर नाव की सवारी से मेरी माँ किसी किसी प्रकार घर पर पहुँची। घर को चारों ओर से पानी घेरे हुआ था। आँगन मे दरवाजे होकर पानी प्रवेश कर मिट्टी की दिवाल को ढाह गिराने लगा। देखते देखते बने बनाये मकान सब पानी में मिल गये। भदई, अगहनी बिलकुल साफ हो गई, दस कोस में कहीं एक छटाँक फसिल होने की आशा नहीं है। अन्न बिना लोग भूखों मर रहे हैं। रहने के लिये घर नहीं, खाने को अन्न नहीं, पहनने को कपड़ा नहीं, इससे बढ़कर अब और कष्ट गृहस्थों के लिये हुई है क्या! गाँव के गाँव इसी दुर्दशा मे समय बिता रहे हैं। प्यासे को ओस चटाकर तृप्त करने की भाँति गवर्नमेंट से कहीं कहीं भूखों को थोड़ा सा अन्न मिलने का बन्दोबस्त हो रहा है। गाँव प्रति दो एक धनी हैं भी तो वे कहाँ तक किसकी रक्षा कर सकते हैं। जिसकी रक्षा जगदीश्वर से हो नहीं सकती उसकी रक्षा मनुष्य की सामर्थ्य नहीं जो कर सके। कहाँ तक लिखूँ दरभङ्गे और मुजफ्फरपुर जिले के अधिकाश लोग घोर दुर्भिक्ष रूपी काल के ग्रास होने को प्रस्तुत हैं। कदाचित् ईश्वर की दयादृष्टि इन लोगों पर पड़ी तभी उबार है नहीं तो इतने निरवलम्ब निस्सहाय नरनारियो के जीवनरक्षा का कोई उपाय नहीं। अस्तु श्रीमान बड़ा सरकार की अस्वस्थता दिन दिन बढ़ती ही जाती है। यहाँ आकर इनकी तंदुरुस्ती और भी बिगड़ गयी है। शरीर में आबल्य इतना है कि थोड़ा सा परिश्रम बरदास्त नहीं होता। दिमाग घूमता रहता है। अत्यंत खेद का विषय है कि इनके सदृश वीर धीर पुरुष इस समय असह्य शारीरिक पीड़ा का उपभोग कर रहे हैं। इनकी अवस्था देख हमलोगों को अपना दुःख भूल जाता है और आँखों में आँसू भर आता है। श्रीमान इसी अस्वास्थ्य के कारण इस वर्ष देवी पूजा भी स्वयं नहीं कर सके। चिकित्सा तो सब प्रकार से हो रही है। फल ईश्वर के हाथ है। इति

कृपाकांक्षी

[२] जनार्दन झा

मैंने अगष्ट की सरस्वती ध्यानपूर्वक पढ़ी। श्रीमान को भी पढ़ कर सुनाया। हम लोगों के विचार से यह निश्चय

(यह किसी पत्र का शेषांश प्रतीत होता है। कारण, इस पर सिरनामा तथा दिनांक आदि कुछ नहीं है।)

हुआ कि अगष्ट की सरस्वती में निम्नलिखित लेख बहुत उत्तम उपदेशप्रद और हृदयग्राही छपे हैं। हम लोग आशा करते हैं कि आप ऐसे ही अत्युत्तम लेख प्रकाशित कर सरस्वती के सहृदय सरस पाठकों के हृदय को रंजित करेंगे।

१—रीवाँ नरेश का चित्र और चरित्र,
२—द्रव्यमाहात्म्य,
३—काल की आत्मकहानी,
४—विकास सिद्धांत,
५—परमात्मा की परिभाषा,

[३]

बाजितपुर

२४६४ २१-१२-०६

श्री हरिः

प्रिय मान्यवर महोदय !

(पत्र सादे कागज पर लिखा गया है।)

मैंने आपका कृपापत्र विलंब से पाया, इस का कारण यह कि मैं एक सप्ताह के लिये कहीं अन्यत्र गया था।

आपके ज्वर होने की वार्ता से चित्त अत्यंत दुखी हुआ, अब आपकी तबीयत कैसी है सो कृपा करके लिखिये। जी लगा है।

मैथिल ब्राह्मणों को कन्यादान में विशेष व्यय अथवा कष्ट नहीं उठाना पड़ता क्योंकि हम लोगों में वर से रुपया लेकर भी कन्यादान की रीति प्रचलित है अतएव कन्यावाले को उतनी चिंता नहीं रहती।

श्रीमान अभी बराबर मुङ्गेर ही रहेंगे। मुझे अपने अनुज्ञापक पत्र द्वारा शीघ्र बुलाते हैं। अगहन की पूर्णिमा तक वहाँ जाने का मेरा इरादा है।

आप यदि कलकत्ते जायँ तो अवश्य मुङ्गेर होकर लौटेगें। हम लोग आपके दर्शन की अनुक्षण प्रतीक्षा करते रहेगें।

श्रीमान् आपकी रची हुई पुस्तक को सहर्ष स्वीकार करेंगे। मैं श्रीमान की चित्तवृत्ति का अनुभव करके ऐसा लिखा है। पुस्तक कितनी बड़ी है, और किस आधार पर लिखा गया है सो लिखेंगे। बन पड़े तो एक प्रति छप जाने पर मेरे पास भेजने का अनुग्रह कीजियेगा। हमें जहाँ तक स्मरण होता है

निम्नलिखित पुस्तकें श्रीमान को समर्पित की गई है। कोई कोई ग्रंथकार अपनी पुस्तक के प्रतिष्ठार्थ श्रीमान से अनुमति बिना लिये कदाचित् श्रीमान के नाम से अर्पण कर दिये हों संभव है। परंतु आप कृपा करके उन क्षुद्र पुस्तकों के नाम लिख भेजिये तो मैं उसके विषय में फिर आपको लिखूँगा। इति

आपका कृपाकांक्षी
जनार्दन झा

अपरच—
उत्तर भेजने में अधिक विलंब हुआ सो क्षमा कीजियेगा।

[४]

२४६२

Golkothi
Monghyr
१६-१२-१६०६

श्री हरिः

प्रियवर श्री पण्डित जी

प्रणाम।

आपका फैजाबाद से भेजा हुआ कृपापत्र पहुँचा। कुशल समाचार पाकर चित्त प्रसन्न हुआ। मुंगेर के पते से आपका प्रथम पत्र भी जो मेरे नाम से भेजा गया था हस्तगत हुआ।

श्रीमान को छः सात दिन से बुखार होता है। कलकत्ते जाने को दिन आज ही का नियत था पर इस दिन में अब कैसे जा सकेगें। यदि ज्वर निवृत्त हो जायगा तो २५ दिसंबर तक वहाँ जाने का निश्चय है कलकत्ते कदाचित् नहीं जा सकेंगे तो बराबर अभी यहीं रहने का विचार है।

काशी से एक प्रसिद्ध वैद्य कविराज धर्मदास बुलाए गए हैं। तीन महीनों मे ये श्रीमान को आरोग्य कर देने की आशा दे रहे हैं। आज से इनकी चिकित्सा शुरू होगी। ईश्वर करे कि इनकी दवा से श्रीमान् आरोग्य प्राप्त कर बलिष्ठ हो।

आपकी स्वाधीनता हिंदीग्रन्थमाला में छप रही है। श्रीमान कुछ अच्छे हो जाने पर उसे सुनेंगे। मै पढ़ रहा हूँ। बहुत उत्तम अनुवाद हुआ है। आप श्रीमान को समर्पण करने का जो विचार रखते हैं वह श्रीमान् को मैंने लक्षित कर दिया है। वे खुशी से समर्पण स्वीकार करेंगे। इति

भवदीय कृपाकांक्षी
जनार्दन झा

पत्र राजमुद्रांकित कागज पर लिखित है।

[५]

गोलकोठी मुङ्गेर

२४८६ २६-३-०७

प्रिय पण्डित जी महोदय !

लसत्तुमत्प्रणतिर्भवन्तिके ।

पत्र आधे कागज पर लिखा गया है।

आपका भेजा दूसरा कृपाकार्ड भी मैंने पाया। आपने सविस्तार समाचार शीघ्र सूचित करने को लिखा था जिसे मैं किसी कारणवश शीघ्र न लिख अब लिखता हूँ। स्वाधीनता का समर्पण श्रीमान को अङ्गीकार है यह तो मैं पहले ही लिख चुका हूँ। किंतु इस विषय में कुछ आपसे मैं पूछना चाहता हूँ जिसका स्पष्ट उत्तर दे आप कृतार्थ करेंगे।

(१) किस अभिप्राय से आप श्रीमान के नाम स्वाधीनता समर्पण करना चाहते हैं।

(२) श्रीमान ग्रंथसमर्पण के पुरस्कार में आपको द्रव्य द्वारा सत्कृत करना आवश्यक समझते हैं आप इसमें सम्मत है वा नहीं ?

(३) ग्रंथरचना में आपने परिश्रम विशेष रूप से किया है जिसके उपहार में आप विद्वानों से प्रशंसा के अतिरिक्त और क्या पा सकते हैं। परंतु आपका उचित सत्कार भी श्रीमानों का कर्तव्य ही है अतः आपका सत्कार करना श्रीमान राजा साहब अपना कर्त्तव्य समझते हैं और ग्रंथ समर्पण के बदले कितने द्रव्य पाने से आप अपनी मानहानि वा अप्रतिष्ठा न समझेंगे यह श्रीमान बूझना चाहते हैं।

श्रीमान अपनी अवस्था के अनुसार आप के सम्मान करने को प्रस्तुत हैं किंतु इस विषय में आपका आशय वे जानना आवश्यक समझते हैं।

(५) आप श्रीमान की वर्तमानकालिक अवस्था से प्रायः अपरिचित न होंगे।

एतदतिरिक्त श्रीमान आपसे कुछ काम लेना चाहते हैं और कुछ कष्ट देना चाहते हैं वह यह कि श्रीमान ने "राजा रानी" का अनुवाद हिंदी भाषा में किया है। उसका संशोधन

आप के द्वारा हो यह उनका इरादा है। इसमे जो आपको परिश्रम पड़ेगा उसका पारितोषिक भी आपको श्रीमान की ओर से अवश्य भेजा जायगा। द्रव्य अथवा कोई वस्तु जो आप चाहेंगे। संशोधन का विशेष तात्पर्य्य यह है कि "राजारानी" के अनुवाद में ग्रामीण की भाषा श्रीमान ने बैसवाडे की रखी है परंतु स्वयं उसमे विज्ञ न होने के कारण भाषा जैसी होनी चाहिये नहीं हुई है। आप उस प्रान्त के रहनेवाले हैं आप उसे बखूबी सुधार सकते हैं अतः संशोधन का भार श्रीमान आप ही को देना चाहते हैं। इस विषय मे भी आप अपनी सम्मति लिखियेगा।

"स्वाधीनता" श्रीमान सुन रहे हैं परंतु इन दिनों श्रीमान का स्वास्थ्य फिर बिगड़ गया है जिससे किसी काम मे तबीयत नहीं लगती है।

स्वाधीनता का विषय तो साहब बड़ा ही गंभीर है। पर भाषा की सरलता में तो आपने कमाल मेहनत की है। बोलचाल की भाषा के लिये आदर्श का प्रथमावतरण समझना चाहिये।

मेरी तबीयत भी दो तीन दिन से अच्छी नहीं है। मेरे बहनोई का घर जल गया है। मेरी बहन अपनी संतानो के सहित मेरे घर आना चाहती है। उनको इस समय मँगालेना जरूरी है। इति

आपका कृपाकांक्षी
जनार्दन झा

[६]

श्रीहरिः

गोलकोठी मुङ्गेर
३०-१-०७

२४८८

श्री पण्डित जी महोदय !

प्रणतिरस्तु भवत्सु गुणाब्धयः।

आप का कृपा पत्र पाया। स्वाधीनता के विषय मे आप का अभिप्राय बहुत ठीक है। मैं आपके पत्र का साराश श्रीमान को कह सुनाया। आपने जो "राजारानी" संशोधन

करना अङ्गीकार किया उससे श्रीमान् को विशेष संतोष हुआ है। उक्त अनुवाद की कॉपी आपकी लिखित रीति पर लिखवाकर श्रीमान् आपके निकट भेजेंगे। और उसके साथ मूल ग्रंथ भी भेज दिया जायगा। स्वाधीनता की छपाई में कितने रुपये खर्च हुए हैं? कृपा कर मुझे सूचित कीजिये।

श्रीमान् का नाम यदि आप उचित समझें तो "श्रीमान् साहित्यसरोज कविकुलचन्द्र कुमार कमलानन्दसिंह" अथवा "श्रीमान् कुमार कमलानन्दसिंह साहित्यसरोज कविकुलचन्द्र" अथवा निरुपाधि लिखना आप अच्छा समझें तो वैसा ही लिखें यह आपके विचाराधीन है परंतु "श्रीनगर पुर्निया" का उल्लेख नाम के द्योतनार्थ लिखा जाना सम्यक् होगा।

ग्रंथ लिखने में तो साहब आप बड़ी बहादुरी दिखला रहे हैं। आप के करकल्पपल्लव से बराबर विद्वानों के विनोदार्थ तरह तरह की रसभरी सुखप्रद पुस्तकों का अवतरण होता ही रहता है। फिर "सम्पत्तिशास्त्र" की रचना हो रही है वाह बलिहारी है आपकी। अच्छा संपत्तिशास्त्र किसी ग्रंथान्तर का अनुवाद है या स्वकल्पित है?। विषय तो उसके नाम से ही झलकते हैं। तथापि आप भी लिखियेगा। मैं अब अच्छा हुआ। घर जाने का इरादा है। देखें कब फ़ुरसत मिलती है। मेरे लिये एक प्रति "गङ्गालहरी" जो आपके द्वारा छपी है भेजने की कृपा कीजियेगा। मौजूद न हो तो उतनी जरूरत नहीं। फिर कभी मँगालूँगा। इति

भवदीय कृपाकांक्षी
जनार्दन झा

इस पत्र पर द्विवेदी जी ने पेंसिल से अंगरेजी में रिप्लाइड ५-४-०७ लिखा है। पत्र सादे कागज पर लिखा गया है।

स्वाधीनता के आदि में श्रीमान् का नाम देना यदि आप उचित समझें तो "ब्लौक" भेज दिया जाय पर एक बात यह है कि यह ब्लौक जो आनन्दमठ के लिये बनवाया गया था प्रायः कुछ बिगड़ा हुआ है जिसकी जाँच आप आनन्दमठ मे छपी हुई श्रीमान की प्रतिमूर्ति से कर ले सकते हैं अतः यदि ब्लाक की सुधार वहाँ करके चित्र उतारा जाय तो ठीक है यदि इस ब्लौक की सुधार न हो सके तो आपके लिखने पर श्रीमान् अपना चित्र भेज देगें। आप दूसरा उत्कट तैयार

करालेंगे और उसी से चित्र उतरवावेंगे। जो आपकी राय हो लिखियेगा। इति

[७]

गोलकोठी मुङ्गेर

२४८७ ६-४-०७

श्री हरिः

श्रीगङ्गादेव्यैनमः

प्रिय पण्डितजी महाशय !

प्रणाम

आपका उत्तर आया, जिसे पढ़कर श्रीमान् को सुनाया। किसी उद्देश्य से मनुष्य कोई परिश्रम क्यो न करै फल देने वाला वही महापुरुष है जब तक उसकी कृपा न हो कोई कार्य फलवान् नहीं हो सकता। किंतु सच्चे मन से संसार के उपकारार्थ जो श्रम किया जाता है वह कभी निष्फल नहीं होता यह ईश्वर का एक नियम सा है। किसी कवि ने भी कहा है "स्वार्थान् संपादयंतः सतत प्रियतरारम्भयन्त्नरः"। आप जो इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से देशोपकार के लिये हिंदी की सेवा कर रहे हैं वह कभी विफल होनेवाला नहीं। आम के पेड़ रोपनेवाले फल की अपेक्षा दूसरे से कदापि नहीं रखते, वही पेड़ समय पाकर फलता है और रोपनेवाले को ही नहीं किन्तु रसज्ञमात्र को अपने सुस्वादु फल से तृप्त करता है। ठीक तैसे ही आपके निर्मित ग्रन्थ भी समयानुसार आपको यशोरूपी चिरस्थायी मधुर फल से अवश्य तृप्त करेंगे। अस्तु —

पत्र सादे कागज पर लिखा गया है।

स्वाधीनता के पुरस्कारार्थ श्रीमान् आपको पाँच सौ रु० देने की इच्छा मुझसे प्रकट की है। परंतु बात उसमें यह है कि श्रीमान् ने प्रतिवर्ष हिन्दी के सुलेखकों को साहाय्य देने की जो कुछ व्यवस्था नियत कर रखी है वह इस वर्ष के लिये हो चुकी। मेरे कहने का मतलब यह है कि श्रीमान् को आप स्वाधीनता समर्पण इस वर्ष में करेंगे किंतु श्रीमान् इसके सम्मान सूचक द्रव्य आश्विन दसहरे के अवसर पर आपको भेजेंगे। श्रीमान् के यहाँ आवण से नूतन वर्ष का आरम्भ माना जाता है और राजकीय कार्य का अनुक्रम भी

इसी गणना से चलता है। मैं जहाँ तक समझता हूँ आप प्रायः इसमें असम्मत न होंगे।

टाइटेल पेज पर आप श्रीमान् का नाम निरुपाधि भले ही लिख सकते हैं परंतु समर्पण के लेख में श्रीमान् का नाम सोपाधि लिखना उचित होगा अथवा सभा मण्डल इत्यादि से जो श्रीमान् को उपाधि मिली है श्रीमान् के सम्मानार्थ उसका उल्लेख आप किसी ढंग से कर देना उचित समझेंगे। इति

भवदीय
जनार्दन झा

[८]

श्री हरिः

Srinagar Deorhi

२४७० Dated 27-1-1908

परम प्रिय पण्डित जी महोदय !

प्रणति पूर्वक निवेदन है कि आपका कृपामय कार्ड आज प्राप्त हुआ। आपकी अस्वस्थता का हाल पढ़कर चित्त अत्यंत दुखी हुआ। ईश्वर शीघ्र आपको स्वास्थ्य प्रदान करे। अभी आप श्रम को मुलतवी रखें। अधिक परिश्रम करना अवश्य आरोग्य में हानि पहुचाता है। आप तो स्वयं सर्वज्ञ हैं। इतना जो मैंने निवेदन किया है वह केवल अपने हृदय का आवेग प्रकट किया है।

मैं २४-१ को घर छोड़ शनिवार की रात में यहाँ सकुशल पहुँचा। उसी दिन श्रीमान् भी कलकत्ते से यहाँ आये। कल रात में श्रीमान् की कन्या का पाणिग्रहण हो गया। जिसके लिये बहुत दिनों से श्रीमान् परेशान थे। वह कार्य कुशलपूर्वक संपन्न हो गया। इस शुभ संवाद से आपके चित्त में विशेष हर्ष होगा। दो सप्ताह के अभ्यन्तर में ही श्रीमान् यहाँ से यात्रा कर मुङ्गेर होते हुए नवहदा जायँगे। जहाँ जाने का निश्चय पूर्व ही कर चुके थे।

श्रीमान् इस बार कलकत्ते में पं० उमापतिदत्त जी से मिले और देवनागर पत्र के विषय में विशेष जिज्ञासा की। देवनागर का उद्देश्य उत्तम जानकर १००) की सहायता तत्काल उन्हें

पत्र श्रीनगर राज मुद्रांकित कागज पर दोनों ओर लिखा गया है।

दी और आगे के लिये भी उसके सहायक बने। वहाँ प्रसंगात् आपकी चर्चा चली। प्रायः आपने कोई नवीन पुस्तक उनके अवलोकनार्थ भेजी है। श्रीमान् उसे देखना चाहते हैं यदि आपको कोई बाधा न हो तो भेजकर इन्हें अनुगृहीत करेंगे। जहाँ तक हो सके, हम लोगों को उचित है कि श्रीमान् की चित्तवृत्ति को इस ओर आकृष्ट करें।

चित्र जो आप भेजेंगे उनमें एक तो मोहिनी को रहने दीजियेगा और दो चित्र आप और भेजने की कृपा करेंगे। और उन चित्रों के उपयुक्त कुछ ऐतिहासिक विषय भी लिख भेजियेगा। मोहिनी कौन है यह मैं नहीं जानता किसकी लड़की है। किस पर इसका प्रेम था इत्यादि बातो का जानना भी जरूरी समझता हूँ। ऐसे तो जहाँ तक हो सकेगा प्रकृति वर्णन किया ही जायगा पर रोचकता के लिये कुछ ऊपर की बात भी मिलाना ठीक होगा। अच्छा कविता किस छंद में बनायी जाय। नियम हिन्दी का वा ब्रजभाषा का यह भी सूचित कीजियेगा। श्रीमान् भी चित्र पर कविता करने का उत्साह दिखलाते हैं।

श्रीमान् के पास अभी तक जनवरी की सरस्वती नहीं आई, इसका क्या कारण है? श्रीमान् आप से पूछने के लिए मुझे आज्ञा दी है और यह भी कहा है कि आप सरस्वती के मैनेजर को इस विषय में जरा मुलायमियत के साथ पूछें कि श्रीमान् के पास अब तक सरस्वती क्यों नहीं भेजी गयी। श्रीमान् जब मूल्य के अतिरिक्त भी सरस्वती का सब प्रकार साहाय्य करने के लिए तैयार रहते हैं तब उनके साथ ऐसा व्यवहार क्यों?

आप अब कैसे हैं? क्या होता है? लिखियेगा मैं भी अभी शरीर से दुर्बल हूँ। पर कुछ दिन में बलवान होने की आशा है। ऐसे तो मैं बराबर जन्म से ही शरीर का दुबला पतला हूँ। कभी कभी कुछ तरक्की हो जाती है। बाबू मुरलीधर यहीं हैं श्रीमान् कुमार जी को पढ़ाने पर नियत हुए हैं। इति।

अपने घर पर का कुशल समाचार भी लिखियेगा।

कृपाकांक्षी
जनार्दन झा

[६]

श्रीहरिः

SRINAGAR RAJ PURNEA

२४६६ dated—8-2-1908

प्रियवर पण्डित जी महोदय !

प्रणति पूर्वक निवेदन है कि आप का भेजा हुआ दो चित्रों से अलङ्कृत कृपा पत्र पाया आप की अस्वास्थ्यवार्ता ने चित्त को अत्यंत दुःखी किया। डाक्टर ने इलाज तो बहुत अच्छी बतलायी है। गाइये, बजाइये, हँसिये, हँसाइये, जिस प्रकार हो दिल को बहलाइये और दिमाग को पुष्ट कीजिये। थोड़े दिनों तक लिखने पढने का काम बिलकुल बन्द कर दीजिये। बुद्धि को विश्राम लेने दीजिये। बड़ी बड़ी चिठ्ठी किसी दूसरे से लिखवाया कीजिये। कविता वा अन्यान्य लेख लिखने की भावना को अभी मन में न आने दीजिये। और जहाँ तक हो स्वास्थ्यहानिकारक कामों से कुछ दिन अलग रहिये। दिल दिमाग ठीक हो जाने पर फिर धीरे धीरे व्यवसाय प्रारम्भ कर दीजिएगा।

कृष्णविरहिणी राधिका और परशुराम के चित्र पर मैं अपनी बुद्धयनुसार कविता रचकर आपके मनोरंजनार्थ अवश्य भेजूँगा। अहल्या पर भी यदि कुछ हो सकेगा तो लिखूँगा। श्रीमान् शायद गङ्गावतरण और रुक्माङ्गदा पर कविता करने की इच्छा रखते हैं। पर ये काम मुङ्गेर जाने पर सम्पन्न होंगे। कलह श्रीमान् के द्वितीय कुमार का कर्णवेध और अक्षरारम्भ था सो सम्पन्न हुआ। इन दिनों यहाँ उत्सव पर उत्सव होने के कारण चित्त प्रकृतिस्थ नहीं होने पाता। जलसे में ही दिन रात कट जाती है। माघी पूर्णिमा के दो एक दिन पहिले ही मुङ्गेर जाने का निश्चय श्रीमान् कर चुके हैं। और सब कुशल है।

भवदीय कृपाकांक्षी
जनार्दन झा

इस पत्र द्विवेदी जी ने अंग्रेजी में 'रिप्लाइड फ्राम अजमेर' लिखा है। पत्र सादे कागज पर लिखा गया है।

[१०]

श्रीहरिः

GOL KOTHI
Monghyr—1-3-1907

२४९१

प्रिय पण्डित जी महोदय !

प्रणाम, प्रणाम ।

आप का कृपाकार्ड मेरे परोक्ष में यहाँ आया था जो यहाँ आने पर मुझे मिला। मैं श्रीमान की बड़ी कन्या के वरान्वेषणार्थ दरभङ्गा के प्रान्त में जहाँ मैथिल श्रोत्रियों की घनी बस्ती है गया था। तीन सप्ताह पर यहाँ आया। कन्यानुरूप वयोरूपगुणसम्पन्न वर मुझे नहीं मिला। अतएव अभी कन्यादान रुक गया। वैशाख में श्रीमान कुमार गङ्गानंद सिंह का यज्ञोपवीत होनेवाला है। योग्य वर ठीक हो जाने से अब कन्यादान भी वैशाख ही में होने की संभावना है।

श्रीमान् बड़ा सरकार १७ फेब्रेवरी को कलकत्ते से यहाँ आगये अभी बराबर यहीं रहेंगे। आपकी स्वाधीनता जो हिंदी ग्रंथमाला में छपनी है श्रीमान ने अभी तक नहीं पढ़ी। मैं अब पढ़ कर उन्हें सुनाऊँगा। एक दिन मैंने इसकी चर्चा चलाई थी। श्रीमान ने आज्ञा दी कि "इसे पढ़कर अवश्य मुझे सुनाइये"। अब सुनाना शीघ्र प्रारंभ करूँगा तदनतर जो उनकी आज्ञा होगी आपको सूचित करूँगा।

और सब कुशल है अपनी कुशलवार्ता कृपा करके लिखेंगे। इति

भवदीय कृपाकांक्षी
जनार्दन झा

अपच—

प्रार्थनाशतक में यदि कुछ बदलने की इच्छा हो तो उसे अपना ही जान काट छाँट कर प्रकाश कर दीजिए। यदि उसका छपना आप अब अयुक्त समझें तो छोड़ दीजिए।

हाशिए पर द्विवेदी जी ने अंग्रेजी में लिखाहुआ ७-३-०७ लिखा है। तथा पत्र राजमुद्रांकित कागज पर है।

[१०]

श्रीहरिः SRINAGAR PURNEA

dated 18-11-1907.

२४७६ मंगलवार

प्रिय पंडित जी महोदय !

पत्र राज मुद्रांकित कागज पर है तथा उसपर द्विवेदी जी के हाथ की संख्या '२३०६' लिखी है।

प्रणति पूर्वक निवेदन है कि आपके भेजे हुए दो पत्र एक साथ मेरे हस्तगत हुए। श्रीमान् का स्वास्थ्य पूर्वापेक्षया कुछ अच्छा होने लगा था परंतु तीन दिन से ज्वर होने के कारण फिर स्वास्थ्य बिगड़ गया। आलस्य तो पहिले से था ही फिर उपवास करने से और भी बढ़ गया है। शरीर में इतनी सामर्थ्य नहीं है जो टहल फिर सकें ज्वर सामयिक है। शीघ्र आराम होने की आशा है। जबतक बाखूबी आरोग्य प्राप्त न होगा तबतक यहीं रहने का इरादा है। आपका आशीर्वादी पत्र श्रीमन् को मैंने पढ़कर सुना दिया। श्रीमान् ने आपके आशीर्वचन को शिरसा धारण कर हृदय से कृतज्ञता प्रकाश की और अपना कुशल समाचार बराबर आपके निकट भेजने की मुझे आज्ञा दी। अभी तक नवंबर की सरस्वती श्रीमान् के पास नहीं पहुँची है। जिस संदेह के निवारण की सूचना आपने दी है, प्रथम तो संदेह का अंकुर होना ही असंभव है कदाचित् इस विषय में श्रीमान् को कुछ खटकेगा तो मैं आपके आज्ञानुसार उन्हें उस पत्र के द्वारा संदेह को निर्मूलतया निवारण कर दूँगा। आप उसके लिये कोई चिंता न करें। विद्वान् लोग अपने लेख द्वारा हृद्गत भाव को व्यक्त करते हैं उन्हें किसी पर आक्षेप करने का प्रयोजना थोड़ा ही रहता है तब जो उस विषय के लक्ष्य हैं वे यदि अपने ऊपर उस आक्षेप को ले लेवें तो इसमें लेखक विचारे का कौन दोष है ? और यदि इस प्रकार लोग आक्षेप समझने लगेंगे तो फिर लेख लिखा ही कैसे जायगा। लेख लिखने का अभिप्राय भी तो यही है कि लोग उसके द्वारा उपदेश ग्रहण कर अपने को सुधारें न कि आक्षेप समझ प्रत्युत उसके विरोधी हों। अस्तु.

आप भी इस समय ज्वर से पीड़ित हैं यह जान मन में

अत्यंत खेद हुआ। ईश्वर आपको शीघ्र आरोग्य प्रदान करें। दो चार दिन तो मेरी तबीयत भी गड़बड़ा गई थी पर अब अच्छा हूँ। अभी तक ज्वर से बचा हुआ हूँ। किंतु यहाँ मलेरिया का ऐसा प्रचंड प्रकोप है कि शायद ही कोई उसकी दया दृष्टि से बचे। कोई घर ऐसा नहीं है जिसमें दो चार ज्वरी न पाए जायँ।

और सब कुशल है। अपना कुशल समाचार कृपया लिखते रहेंगे और हाल यथासमय आपको लिखूँगा। अभी श्रीमान् के खास का काम बिलकुल बंद है। इसी से मैं भी मौनावलंब किए बैठा हूँ। कुछ निवेदन करने का साहस नहीं होता है इनका शरीर कुछ अच्छा हो जायगा तब जो सब आवश्यक कार्य है वह पूरा करके ही कोई दूसरा कार्य होगा। इति

भवदीय कृपाकांक्षी
जनार्दन झा

[११]

श्रीनगर राज
मुंगेर गोलकोठी

२४६० ता० २५ मई १९०६

प्रियवर महोदय !

आपका पत्र पढ़कर मुझे बड़ा शोक हुआ, आपने अपनी इस बीमारी का हाल एक बार पहिले भी लिखा था, परंतु फिर उसका कुछ समाचार नहीं पाने से मुझे अनुभव हो गया था कि आप अब बिलकुल अच्छे हैं, लेकिन अब इस खत को पढ़कर मुझे नेहायत दुःख हुआ है। मेरे ख्याल में तो यह रोग सब रोगों से बढ़कर है। आप इसकी दवा जरूर कराइए। यह रोग बहुत पुराना हो गया है, अब उपेक्षा करना ठीक नहीं और खासकर जब हरिद्वार ऐसे सुंदर स्वास्थ्यकर स्थान में जब आपको कुछ उपकार नहीं हुआ, तब चिकित्सा परमावश्यक है। काशी में अमृतशास्त्री, कलकत्ते में विजयरत्न सेन बड़े नामी कविराज और पीयूषपाणि है, इन लोगों से अथवा कोई नामी हकीमों से जरूर इलाज कराइए। आपके बैठने से

पत्र राज मुद्रांकित कागज पर टंकित है। द्विवेदी जी ने अँगरेजी में 'रिसीव्ड २७-५-०६' लिखा है।

हिंदी साहित्य की बड़ी हानि होगी। अगर दो चार महीनों के लिये कामकाज छोड़ना पड़े तो कुछ हर्ज नहीं। अगर आपका स्वास्थ्य दुरुस्त होगा तो मुझे आशा है कि उन चार महीनों की क्षति आप एक डेढ़ महीने में पूर्ण कर लेंगे। मेरे लायक जो काम हो लिखिए हम आपकी सहायता इसमें अपने साध्यानुसार अवश्य करेंगे जिसमें आपका रोग दूर हो। मैं अपने से समझ रहा हूँ कि इन गत तीन वर्षों में मानसिक और शारीरिक पीड़ा के कारण पढ़ने लिखने से मेरी कितनी हानि हुई। ईश्वर न करे कि देश के उपकारी विद्वान् को कभी कुछ रोग हो अथवा अकाल मृत्यु हो। चाहे वह मेरा दुश्मन भी हो। इसलिये आप अपना उत्साह भंग मत कीजिए। इलाज जरूर कराइए, जरूर रोग दूर होगा। इति

आपका प्रेमी
श्री कमलानंद सिंह

[१२]

श्रीहरिः

श्रीनगर पुर्निया

२४६७ १६-६-०८

श्रीयुक्त परमप्रिय पंडित जी महोदय

प्रणतिपूर्वक निवेदन है कि आप का कृपा पत्र मुझे मिला पर मैं यथासमय उत्तर न दे सका सो क्षमा कीजिएगा। आपका कृतज्ञताद्योतक निवेदन श्रीमान् को सुना दिया उन ने प्रसन्नता प्रकट की और कहा कि '१००) उनका मेरे जिम्मे बाकी है वह उन्हें कुछ दिन में भेज दूँगा अभी फरागत में नहीं हूँ' मैं इस विषय में अब और क्या लिखूँ। फिर समय पाकर लिखूँगा।

संपत्तिशास्त्र का समर्पण श्रीमान् झालरापाटनाधिपति ने स्वीकार किया। जानकर चित्त अत्यंत प्रसन्न हुआ इससे उनकी विद्यारसिकता व्यंजित होती है। समर्पण के उपलक्ष्य में उनने क्या लेकर आपका संमान किया सो कृपया लिखिएगा। और स्वाधीनता का स्वत्व आपने अपने हाथ रक्खा है या हिंदी ग्रंथमाला के प्रबंधकर्ता को दे दिया।

पत्र पर संख्या '२४६७' द्विवेदी जी के हाथ की लिखी है।

आपका 'वक्तव्य' काशी नागरी प्र० सभा से मँगवा कर श्रीमान् ने तो स्वयं पहिले ही पढ़ लिया, मैं भी अवसर पाकर इधर साद्यंत पढ़ गया। आप ने तो हद कर दिया ऐसा मनोरंजक और सत्यघटनावलित लेख पढ़ने से जो आनंद मुझे हुआ उसका यथावत् वर्णन नहीं कर सकता। बस आप ही से हो। कृत कर्म के फलभोग का निदर्शन इससे अधिक और उनके क्या लिये हो सकता है। मैं तो इस वक्तव्य की एक नकल लिखकर अपने पास रख लेना बड़ा ही आवश्यक समझता हूँ। बलके इसका लिखना प्रारंभ कर दिया है।

आप का भेजा हुआ चित्र मैंने घर जाने के समय किसी किताब में रख दिया उस समय लौटा न दिया यह मुझसे बड़ी भूल हुई इस समय ढूँढ़ने से मिलता नहीं। जब मिलेगा अवश्य लौटा दूंगा। हो सकेगा तो किसी चित्र पर कविता रच आप की आज्ञा का पालन करूँगा। यहाँ सबलोग कुशली हैं। मेरे घर पर भी आपके आशीर्वाद से सब कुशलपूर्वक हैं। जून के अखीर में श्रीमान् मुंगेर जाने का इरादा रखते हैं। इति

भवदीय कृपाकाक्षी

जनार्दन झा

[१३]

Srinagar raj

२४६३ Gol Kothi

Monghyr, date—19-12-1908

प्रिय महोदय,

बहुत दिनो से आप का कोई पत्र नहीं मिला है। मालुम होता है आप को इतनी फुरसत नहीं मिलती है कि बिना दरकार के कोई पत्र लिखें। मुझे भी फुरसत नहीं होती है कि साहित्य की ओर पुरा ध्यान दूँ और कुछ लेख अपने हाथ से लिखूँ। रेआसत का काम शामोशाम करके फेर कलम धरने का जी नहीं चाहता। इसी से कितना विषय पर लिखने का इरादा रहने पर भी नहीं लिख सकते। ऐसा कोई लेखक भी नहीं है जो शुद्ध और तेज जो हम कहते जायें लिखता

जाय। पहले भी जनसीदन झा मेरे लिखाए लेखों को लिखकर मेरी सहायता करते थे परंतु आज कितने दिन से न जाने किसी गृहविडंबना से उनका चित्त स्थिर नहीं रहता है और जहाँतक मुझे मालूम होता है उनसे अब मेरा काम नहीं हो सकेगा इसलिये एक लेखक की मुझे बड़ी ही जरूरत है। इसबारे में मेरा एक विज्ञापन भी शीघ्र निकलेगा परंतु यदि आप के जानते कोई व्यक्ति ऐसा हो तो मुझे उसके रखने में बड़ा आनंद होगा। उसमें इतने गुण रहने चाहिये।

१—हम जो लेख लिखाये उसे वह तेजी के साथ साफ और शुद्ध लिखे।

२—उसे अच्छा हिंदी का ज्ञान हो और कुछ संस्कृत भी जानता हो।

३—वह पुस्तक और अकबार तेज और स्पष्ट पढ़ सके।

वेतन उसको १५) मासिक दो आदमी का खाना। दसहरा, होली और जड़वार मिलेगा। अथवा २६) सूखा मिलेगा। उसको रहने के लिये मकान भाड़ा नहीं देना होगा। काम करने का कोई समय निर्दिष्ट नहीं है मुझे जब फुरसत मिलेगी तब ही उससे काम लूगा। लेकिन उसके खाने पिने और आराम का विचार मैं जरूर रखूगा।—

आज एक प्रति 'सम्पत्तिशास्त्र' इंडियन प्रेस से मुझे मिली जिसके लिये आपको धन्यवाद देता हूँ। धन्य आप है आप ऐसा विद्वान हमें दृष्टिगोचर नहीं होता है जो हिंदी की ऐसी सेवा तनमन से करता। जितनी प्रशंसा आपकी की जाय सब थोड़ी है। खेद इतना ही है कि इसके गुणग्राहक बहुत कम हैं।

और क्या लिखे अपना कुशल लिखिएगा। इति

भवदीय

श्री कमलानंद सिंह

द्विवेदी जी ने पत्र पर अंगरेजी में 'रिव्याइज्ड २१-११-०८' लिखा है। पत्र सादे कागज पर लिखा गया है।

विमर्श

औचित्य विमर्श

शिवकुमार मिश्र

•

नागरीप्रचारिणी पत्रिका सं० २०२१ वि० के अंक ३ में पृष्ठ ४३० पर राँची विश्वविद्यालय के हिंदी प्रोफेसर डा० रामखेलावन पाडे द्वारा लिखी गई डा० राममूर्ति त्रिपाठी की पुस्तक 'औचित्यविमर्श' की एक 'समीक्षा' प्रकाशित हुई है। उक्त समीक्षा के अंतर्गत डा० पाडे ने औचित्य विमर्श पुस्तक को लेकर अपने जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं, वे आश्चर्यजनक हैं और उन पाठकों को निराश करते हैं जो सभा की इस पत्रिका को केवल इसी लिये पढ़ते हैं कि उसके माध्यम से विद्वान् लेखकों द्वारा लिखी गई स्तरीय, विचारपूर्ण तथा गंभीर सामग्री प्राप्त होगी। एक विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्रोफेसर, तथा एक पुराने लेखक द्वारा अपने दायित्व की यह उपेक्षा विलक्षण प्रतीत होती है। विस्तार में न जाकर यहाँ मैं उक्त समीक्षा के अंतर्गत आलोच्य कृति के विषय में उठाई गई कतिपय मुख्य बातों को ही ले रहा हूँ।

समीक्षक के अनुसार पुस्तक की पहली और उल्लेखनीय कमी यह है कि जहाँ लेखक डा० त्रिपाठी ने औचित्य विचार चर्चा के क्रम में औचित्य विषयक अन्य अनेक आधुनिक लेखकों के अभिमत दिए हैं वहाँ पं० बलदेव उपाध्याय का छूटना आश्चर्यजनक है, क्योंकि 'साहित्यशास्त्र' में उन्होंने औचित्य संप्रदाय की चर्चा की है। डा० पाडे की जानकारी के लिये मैं यह सूचित करना चाहता हूँ कि वे पुस्तक के भीतर अपनी दृष्टि दौड़ाएँ। उन्हें दिखाई देगा कि पुस्तक के पृष्ठ १५५ से प्रारंभ होकर पृष्ठ १५६ तक केवल पं० बलदेव उपाध्याय और उनकी साहित्यशास्त्र पुस्तक की ही औचित्य विषयक चर्चा का उल्लेख है।

डा० पाडे के अनुसार पुस्तक की दूसरी कमी यह है कि उसका 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विकास का अध्ययन मूल ग्रंथों पर आधृत नहीं।' डा० पाडे की जानकारी के लिये निवेदन है कि पुस्तक पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विकास पर नहीं औचित्य सिद्धांत पर लिखी गई है। उसमे पश्चिमी काव्य शास्त्र के उन प्रमुख विचारकों का ही उल्लेख है जिन्होंने काव्यगत औचित्य पर प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से कुछ कहा है। पता नहीं औचित्य चर्चा वाली किसी कृति से डा० पाडे को यह अपेक्षा क्योंकर हुई, फिर मूल ग्रंथों से डा० पांडे का आशय क्या है, हम इसे भी

पूरी तरह नहीं समझ पाए, कारण औचित्य चर्चा के संदर्भ में डा० त्रिपाठी ने जिन पश्चिमी आचार्यों तथा विद्वानो का उल्लेख किया है। उनमें से अधिकांश के औचित्य संबंधी अभिमत उन्होने मूल ग्रंथों के आधार पर ही दिए हैं, डा० त्रिपाठी ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं के जानकार नहीं हैं अतः उन्होंने प्लेटो तथा अरस्तू के अभिमतों के लिये उनके ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवादों का सहारा लिया है, लौंजिनस के ग्रंथ का तो हिंदी अनुवाद भी उपलब्ध है, अतः यहाँ उसे आधार बनाया गया है। होरेस पर भी हिंदी में प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध थी अतः उससे सहायता ली गई। यदि डा० पांडे का आशय यह हो कि लेखक को ग्रीक तथा लैटिन के ही मूल ग्रंथ देखने चाहिए थे तब बात और है। कतिपय अन्य प्राचीन पश्चिमी विचारकों के अभिमतो के लिये डा० त्रिपाठी ने गिलबर्ट और कोहन जैसे अधिकारी लेखकों के ग्रंथो को देखा है। वर्ड्सवर्थ, शेली और कालरिज के मंतव्य मूलतः उनकी लिखित 'बैलेड्स', 'डिफेन्स आफ पोएट्री' तथा 'बाइग्राफिया लिटरेरिया' कृतियों से लिए गए हैं। सीमित विषय पर लिखी गई उनकी पुस्तक में उनसे संपूर्ण पश्चिमी काव्यशास्त्र के मूल ग्रंथों पर आधृत विवेचन की अपेक्षा करना एक रोमानी अतिवाद ही कहा जायगा। डा० पांडे यह बताएँ कि मुख्यतः औचित्य चर्चा को लेकर क्या किसी हिंदी लेखक की अबतक कोई ऐसी कृति प्रकाशित हुई है जिसमे इतने विस्तार से पौर्वात्य तथा पश्चिमी विद्वानो के विचारो के संदर्भ में इतनी चर्चा हुई हो। औचित्यविषयक शेली, वर्ड्सवर्थ, कालरिज आदि की मान्यताएँ क्या किसी हिंदी ग्रंथ में उपलब्ध हैं? जाहिर है कि यह सारा कार्य पूरी जिम्मेदारी के साथ हिंदी मे प्रथम बार डा० त्रिपाठी के माध्यम से ही सामने आ सका है।

समीक्षक के अनुसार 'पुस्तक मे ऐतिहासिक अनुक्रम का अभाव' है। डा० पांडे को यह शिकायत भी न करनी पड़ती यदि वे वस्तुतः पुस्तक को पढते। कृति के अंतर्गत भारतीय तथा पश्चिमी विचारकों के जो भी अभिमत दिए गए हैं, वे न केवल ऐतिहासिक क्रम पर आधारित हैं, प्रत्येक प्राचीन विचारक से संबद्ध ऐतिहासिक तिथि तक का कोष्ठको मे उल्लेख किया गया है। 'ऐतिहासिक अनुक्रम' से यदि डा० पांडे का आशय कुछ और हो तो वे उसे स्पष्ट करने की कृपा करें।

समीक्षक के अनुसार कृति के अंतर्गत भारतीय साहित्यशास्त्र को बहिरंग और अंतरंग के वर्गों में वर्गीकृत करने का प्रयास भी 'सात्विक' नहीं है। तब क्या यह प्रयास राजस या तामस है? 'सात्विक' शब्द का आशय समीक्षक से स्पष्टीकरण चाहता है। रहा बहिरंग और अंतरंग विभाजन का प्रश्न, भारतीय काव्यशास्त्र के प्रति सामान्य दिलचस्पी रखनेवाला पाठक भी इस वर्गीकरण के प्रति सहज ही आश्वस्त हो सकता है। पता नहीं वस्तुस्थिति के इतना स्पष्ट होने

पर भी डा० पांडे की सात्विक विचारणा को यह कार्य असात्विक कैसे लगा ? स्पष्ट है कि जब अलंकारवादी और रीतिवादी काव्यशरीर को ही नहीं बल्कि उस शरीर पर आश्रित धर्म को काव्य की आत्मा मानते हैं तब उन्हें काव्यात्मवाद के प्रसंग में यदि बहिरंग न कहा जाय तो क्या कहा जाय ? इनकी अपेक्षा शरीर की तह में निहित रस जैसे सूक्ष्म तत्व को आत्मा माननेवाले ध्वनिवादी तथा रसवादी को यदि अंतरंग भूमिका का स्वीकार किया जाता है, तो क्या अड़चन है ? इस वर्गीकरण को व्यावहारिक भूमि पर मान लेने में हमारी समझ में तो किसी को आपत्ति न होनी चाहिए। यह कार्य यदि सचमुच असात्विक है तो, भारतीय काव्य चिंतन के संदर्भ में बहुत से अन्य मान्य समीक्षकों ने भी इस असात्विकता की जिम्मेदारी ओढ़ी है। भारतीय काव्यचिंतन के संदर्भ में इस बढ़ी हुई असात्विक वृत्ति पर डा० पांडे कहा कहां क्षोभ प्रकट करेंगे।

'काव्य के परिपार्श्व में समस्त भारतीय काव्यशास्त्र का अध्ययन करना अनिवार्य सा है,' डा० पांडे की समीक्षा में आया हुआ यह वाक्य कुछ कटा-कटा सा मालूम पड़ता है। हमारी समझ में प्राचीन आचार्यों ने लक्षणग्रंथों की रचना यों ही नहीं की, लक्ष्यग्रंथ उनके मूल में आद्यंत रहे हैं। फिर अनिवार्य सा है, कहने से क्या अर्थ निकलता है ? अर्थात् अध्ययन अनिवार्य है भी और न भी हो तो काम चल सकता है ? शब्द ब्रह्म है और उसके प्रयोग में असावधानी डा० पांडे जैसे गंभीरता प्रेमी विद्वान् से अपेक्षित नहीं। डा० पांडे के अनुसार डा० त्रिपाठी की वृत्ति 'संग्राहिका' है। संग्राहिका वृत्ति के लिये भी कम से कम उपलब्ध सारी सामग्री को एकत्र करने, अध्ययन करने, तदुपरांत बारीकी के साथ सार तत्व को पकड़कर उसका संग्रह करने की आवश्यकता पड़ती है। जिस युग में समीक्षक बिना कृति को पढ़े, केवल सूची देखकर ही उस पर फतवे देने के अभ्यासी होते जा रहे हों, यह संग्राहिका वृत्ति ही कितनी मूल्यवान हो जाती है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। अपनी अत्यंत लघु समीक्षा में डा० पांडे का अंतिम निष्कर्ष है कि यह विवेचन औचित्य की सीमा और व्याप्ति के निर्धारण में 'अक्षय' ही रहा है। डा० पांडे के अनुसार तो अक्षम रहा है, परंतु छप गया है अक्षम के स्थान पर अक्षय। इसे क्या कहा जाय ? कंपोजीटरों तथा प्रूफरीडरों की भूल, असावधानी या साहित्यविवेक या फिर जिसे पोएटिक जस्टिस कहते हैं, वह। सही बात कहीं भले न गई हो, किसी कारण से छप वही गई है। डा० पांडे यदि दैवी दुर्घटना से क्षुब्ध हुए हों तो वे अगले अंक में भूल सुधार के लिये संपादक को पत्र लिखना पसंद करेंगे ?

कुल मिलाकर डा० पांडे ने आलोच्य कृति को बिना पढ़े ही उसपर अपने निर्णय दिए हैं जो नितांत भ्रामक हैं। डा० त्रिपाठी की पुस्तक की अद्वितीयता

का आख्यान हम नहीं करते परंतु इस विषय पर जबतक कोई अन्य श्रेष्ठतर पुस्तक सामने नहीं आती तबतक अत्यंत परिश्रम तथा विवेक के साथ लिखी गई अपनी पुस्तक के लिये डा० त्रिपाठी बधाई के पात्र माने जायेंगे। उनके इस परिश्रम तथा विवेक की सराहना तब भी होगी जब उक्त विषय पर अधिक विस्तृत विवेचन की पुस्तकें भी सामने आ जाएँगी। डा० त्रिपाठी के काव्यशास्त्र संबंधी जो थोड़े से ग्रंथ इधर प्रकाशित हुए हैं वे स्पष्टतः सूचित करते हैं कि सही अर्थ में वे विषय के पंडित हैं। परिश्रम तथा ईमानदारी के साथ साहित्यविवेक उनके लेखन का प्रधान गुण है। विवेचन तथा विश्लेषण की गहराई में जाने की न कोई सीमा है और न हो सकती है। उनकी जो भी उपलब्धि है हिंदी के इधर के आचार्याभासों की तुलना में कहीं अधिक ठोस तथा महत्त्वपूर्ण है।

मैंने सारी बातें समीक्षक डा० पांडे के लिये कही हैं, व्यक्ति डा० पांडे के लिये कदापि नहीं। व्यक्ति के रूप में वे मेरे आदरणीय बुजुर्ग हैं और रहेंगे।



एक प्राचीन गीताकार : रामसखे

गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

राष्ट्रभाषा हिंदी का अपरिमित भंडार अब भी गाँव गाँव और घर घर में हस्तलिखित ग्रंथों के रूप में भरा हुआ पड़ा है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा और हिंदी साहित्य संमेलन प्रयाग के प्रयत्नों द्वारा अवश्य कुछ ग्रंथ प्रकाश में आ गए हैं किंतु शोध करनेवालों के लिये अब भी विशाल क्षेत्र पड़ा हुआ है विशेषकर मध्यप्रदेश के गाँव गाँव में जहाँ हस्तलिखित ग्रंथों की सचमुच ही अधिकता है।

इन पंक्तियों के लेखक को एक प्राचीन गीतकार 'रामसखे' कृत गीतों का संग्रह दतिया (म० प्र०) में प्राप्त हुआ है, उस पांडुलिपि में, ३६वें गीत से १६६वें गीत तक हैं, प्रारंभ और अंत के पृष्ठ अप्राप्य हैं।

'मिश्रबंधु विनोद' के उत्तरालंकृत प्रकरण में कवि रामसखे से संबंधित निम्नलिखित विवरण है—

(८६०) रामसखे ने श्री नृत्य माधव मिलन (६१ पृष्ठ छोटे) दानलीला (४ पृष्ठ), बानी, दोहावली, मंगलसतक, पदावली, रागमाला (७४ पृष्ठ) और पद (६ पृष्ठ) नामक ग्रंथ लिखे हैं, जो छत्रपुर में हैं। इनका कविताकाल जाँच से १८१५ जान पड़ा। खोज १६०५ में नृत्य माधव मिलन का रचनाकाल १८०४ लिखा है। ये साधारण श्रेणी के कवि थे। प्र० त्रै० रिपोर्ट में इनके एक और ग्रंथ रास पद्धति का पता चलता है। द्वि० त्रै० रि० में इनके एक अन्य ग्रंथ मंगल लतिका का पता चलता है। च० त्रै० रि० में कवित्त, मंगलाष्टक, राघवेंद्र रहस्य रत्नाकर कवितावली तथा सीतारामचंद्र रहस्य पदावली नामक ग्रंथ और मिले हैं।

उदाहरण —

संझा आवनि पिय की लावनि देखौ भावनि अवध गली चलि।
मृगया भेष हरित चरना तन अरु घन कुसुम सजै गुंजै अलि।
लिए कर कुही तुरँग कुदावत जुलफैं छूटी पैज हिए बलि।
रामसखे यह छवि पीजै अब, नेह गेह कुल लाज आज दलि।

खोज से इनके और गीतों व रास पद्धति का पता चला है।

× × ×

प्राप्त पांडुलिपि को देखने से यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि कवि रामसखे को पिंगलशास्त्र के साथ ही साथ राग रागिनी और गायकी का भरपूर ज्ञान था, उन्होंने अनेकानेक रागों में अपने जो गीत प्रस्तुत किए हैं उनसे उनकी योग्यता का भरपूर ज्ञान हो जाता है। कुछ गीत प्रस्तुत हैं—

राग हम्मीर (आड़ो तितारो)

बैठे दोउ सरद में, सरजू-तट, रघुनंदन सिय प्यारी।
वन प्रमोद, नव सुमन कुंजसित, मंडल मनि छवि कारी।
हीरनि में सित क्रीट चंद्रिका, मौतिन जड़ित काछनी न्यारी।
बजत जंत्र सित नगन मढ़े मृदु, नदन तान तस भारी।
भोदल मिलि सित रची चाँदनी, सेतह भोग धरे रुचिधारी।
'रामसखे' सित बनी कांति सब, अमृत तसि दुतिहारी॥३६॥

राग सुमोद (कल्यान औचकतार)

घर मोकों लागै जंजाल, आँखै ललन लुभानी।
वन प्रमोद को कुंजगलिन में, देखत छवि सुखखानी।
कटि पर पीत क्रीट सिर सोहति, जुलफन मति उरझानी।
'रामसखे' अब भई बावरी, नेह समुद्र समानी॥३७॥

राग कम्मोद (औचकतार)

ये री स्याम मेरौ चित चोरो है,
आली बिन देखे छिनु कल ना परती।
चितवत ही चुभि रही दगन छवि,
मूरति पल जिय ते ना टरती।
गई सब लाज कान गुरुजन की,
बार बार अह छाती भरती।
'रामसखे' पिय के सँग फिरिहौं,
अब वन प्रमोद सखि केलि करती।३८॥

राग भोपाली (कल्यान एक तार)

मेरौ चित चोरयौरी, कौसल सुत खेटक के मिस आय।
वन प्रमोद की कुंज गलिन में, सुंदर बदन दिखाय।
खान-पान घर काम सखीरी, मो कौं कछु न सुहाय।
'रामसखे' पिय की सोभा अब, नैनन रही समाय॥३६॥

राग नायकी (कान्हरौ चपतार)

आली मेरी आँखिन लाग गयौ है;
सुंदर राजकुमार चितै कछु चेटक डारि दियौ है।
चल न चकत डग मगति भूमि पग,
तन मन बिबस भयौ है।
'रामसखे' उर अवधि साँवरौ,
निस दिन रहत छयौ है ॥ ४० ॥

राग नायकी (कान्हरौ चौताल)

प्यारी जनक लली री सोहै,
आज राज रंग भरी छबिसौं रचित अति तन।
बसन, कसन, चंदन अरु बंदन,
जातकि मिहदी पान अंजन;
मनि मानिक बलया तिल पाटी,
मोतन सुगंध फूल भूषन।
'रामसखे' पिय संग न टरती,
हित सजि बैठी षोड़स मुदित मन ॥ ४१ ॥

राग नायकी (कान्हरौ तार मूल कवित्त)

सरद निसा है स्वेत, सुंदर सुमन कुंज,
सरजू पुलिन सिया राम मन भाई है;
मुकता मुकुट हीर, हार रघुबीर जू के,
चंद्रमा मरीचै बीचि, बीचि छबि छाई है।
घुँघरू घुमंड, घोर, घूमनि मलिंदन की,
नाचि गीत गति एक, जंत्र जनु जाई है;
सखिन समेत नैन जल जन सौं सीता जू,
पूजे 'रामसखे' स्याम वर सुखदाई है ॥ ४२॥

राग बागेसुरी (कान्हरौ तार मूल)

मानि लै री मानि, मेरी कह्यौ प्यारी।
छोड़ि मानि मुख बोलि, खोल मन, निज कुल की उजियारी।
सजि भूषन अंगन, अंजन हग, ओढ़ि कसमल सारी।
'रामसखे' पिय सुन बिनती यह, मिलि अबे जनक दुलारी ॥४३॥

राग बागेसुरी (कान्हरौ आड़ौ तितारौ)

हो सखि आवौ चलधौ री, स्याम सुंदर देखौरी हँसत हँसत।
बनि कै छबीलो नट क्रीड़ा हित सोमबट सरजू के तटतट,
पीतांबर फेंट कटि कसत कसत।
बाँधै सिर चीरा लाल, जुल्फैं छोड़ौ रसाल,
नैन हू को मद घालैं, पहिरैं उर मोती हार लसत लसत।
'रामसखे' मन मोहै पान खात अति,
सोहै गावति सखन मिलि, सबके दृगन मग बसत बसत।।४४।

राग बागेसुरी (कान्हरौ बड़ौ तार)

बनि ठनि ठाँड़ौ ठाँड़ौ नागर, नट सो मध्र वन बट छाँहीं।
गावति हँसि हँसि तान सखनि मिलि लखन कंध धरि बाँहीं।
क्रीट मुकुट काछनि कटि काछै, नूपुर पगन सुहाहीं।
'रामसखे' या रूप मिलन कौं, मो अँग अग ललचाहीं।।४५।

राग बागेसुरी (कान्हरौ आड़ौ तितारौ)

वीर मैं कैसे धीर धरौं।
बिन भेंटे रघुनाथ गात मृदु, पल पल कलप भरौं।
कठिन पिनाक कंज कर पिय के, जिय अति सोच करौं।
'राम सखे' आवत अब यह मन हठि प्रभु पगन परौं। ४६ ॥

राग दरबारी (कान्हरौ चौतारौ

अवधपुरी आज देखौ सखी री, दीप-दान में सुहाई।
कोटि कोटि रवि ससि दुति निंदति, सोभा वरन न जाई।।
खेलत जुआ सकल सखियन मिलि, धरि हरि बपु समुदाई।
'रामसखे' लखि यह कौतूहल, रति पति जिय ललचाई।।४७॥

शोधशास्त्री, यदि 'रामसखे' के संपूर्ण प्राप्त साहित्य पर भरपूर प्रकाश डालें तो अत्युत्तम हो। प्राप्त पाडुलिपि में राग दरबारी, राग सुहानो, राग मृदु-रेखा, राग छेमनाट, राग हेमनाट, राग स्यामनाट, राग कम्मोद, राग छायानाट, राग काफी, राग हिंडोल, राग बसंत आदि अनेकानेक रागों पर गीत कहे गए हैं।

अपनी राष्ट्रीय निधि को जो हस्तलिखित ग्रंथों के रूप में यत्र तत्र सर्वत्र बिखरी हुई पड़ी है, प्रकाश में लाने की नितात आवश्यकता है।

•

चयन

भक्ति एवं काव्य रस के मत एवं आलोचना

योगेंद्रप्रताप सिंह

[हिंदी अनुशीलन, वर्ष १८, अंक १-२, १९६५ ई० में प्रकाशित निबंध का साराश]

भारती रस सिद्धांतों के क्षेत्र में रस के अंगागिसंबंध की चर्चा आचार्य भरत से प्राप्त होती है, यहाँ इस चर्चा का अभिप्राय रस विशेष की महत्ता स्थापित करना रहा है। भरत का शृंगार रस को महत्त्व देना मूलतः इसी दृष्टिकोण का सूचक है। आचार्य भरत के अनुसार रस की आतरिक संवेदना मन की रति एवं विरतिमूलक मनोवृत्ति पर आधारित है। इस दृष्टिकोण के मार्जन में अग्निपुराण ने केवल शृंगार, वीर, रौद्र और वीभत्स रसों को ही माना है। शृंगार एवं वीर रतिमूलक तथा रौद्र और वीभत्स विरतिमूलक भाव हैं। यही चार रस तदनुसार काव्य में अंगीभूत हैं। शेष हास्य, अद्‍भुत तथा करुण, भयानक क्रमशः इन्हीं से निष्पन्न हैं। शारदातनय ने 'भावप्रकाश' में रसविषयक मानसिक चेतना को क्रमशः चित्त, विकास, विस्तार, विक्षोभ तथा विक्षेप के अंतर्गत रखकर इन्हे आदिकारण माना है। परवर्ती आचार्य इन्हीं मानसिक प्रवृत्तियों को प्रमुखता देते हैं। इससे परे भी अंगागिसंबंध को लेकर संस्कृत में अनेक मतवाद चलते रहे हैं। नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय के शात रससंबंधी प्रक्षिप्त अंश को ही इस चर्चा का श्रेय प्राप्त है। आगे अभिनव गुप्त ने अभिनव भारती में, शंकराचार्य ने सौंदर्य लहरी में, भर्तृहरि ने भर्तृहरि निर्वेद में भवभूति ने उत्तर रामचरित मे करुण रस को ही प्रधान अंगी रस माना है। साहित्य दर्पण में नारायण भट्ट के मत में चमत्कार ही रस का मूलतत्त्व है। अतः वैष्णवाचार्यों के पूर्व ही साहित्य में अंगागि संबंध की चर्चा आरंभ हो चुकी थी। मुख्य प्रश्न यही था कि किस रस को विशेष प्रधान माना जाय।

संस्कृत में भक्तिकाव्यों के प्रणयन एवं भक्ति चेतना के विकास के उपरात रस के अंगागिसंबंध का मौलिक प्रश्न उठाया गया। कारण, संस्कृत के आचार्य भक्ति को रस मानने के पक्ष में नहीं थे। वे उसे भाव की श्रेणी मानतेमें थे।

भक्त आचार्यों ने इस तथ्य को निर्मूल तथा असंगत सिद्ध करने में बहुमुखी प्रयास किया। रस का अंगागिनिरूपण के पीछे भी यही आग्रह प्रधान है। अपने काव्य की स्वतंत्र व्याख्या के लिये 'भक्तिरस' के स्वतंत्र स्थायित्व की चर्चा संगत ही थी। इस स्वतंत्र व्याख्या के लिये इन आचार्यों को संस्कृत काव्यशास्त्र का आश्रय अपेक्षित नहीं था। उनके मत में संस्कृत काव्य प्रकृत जीवन व्यापारों से संबद्ध है। इसके विपरीत कृष्ण की मधुर लीला अलौकिक एवं ग्राह्य है। इसकी व्याख्या काव्य रस से संभव नहीं। अतः भक्ति रस की विशिष्टता का प्रतिपादन इन आचार्यों ने किया। इस भूमिका के संदर्भ में, प्रस्तुत निबंध में मधुसूदन सरस्वती, रूप गोस्वामी, कवि कर्णपूर गोस्वामी, आचार्य वल्लभ तथा बोपदेव आदि के मतों की आलोचना करते हुए यह माना गया है कि भक्ति रस की अनुभूति अलौकिक नहीं, अलौकिकत्व का आभास ही है।

*

निर्देश

हिंदी अनुशीलन, वर्ष १८, जनवरी जून १९६५

निर्गुणोपासना और सगुणोपासना में हिंदी और मराठी कवियों का दृष्टिकोण—न० चि० जोगलेकर।

कामायनी में भारतीय संस्कृति का स्वरूप—प्रमिला शर्मा।

चैतन्य संप्रदाय के कवि नाथ भट्ट — नरेश बंसल।

भाषा, वर्ष ५, अंक २, दिसंबर १९६५

भारतीय भाषाओं में नवीन वैज्ञानिक शब्दावली के विकास में संस्कृत की महत्ता — कांतिकृष्ण 'अपूर्व'।

'सुश्रुत' का कृतान्न वर्ग — हरिहर प्रसाद गुप्त।

मलयालम में प्रयुक्त हिंदी शब्द — वेल्लायणि अर्जुनन्।

जर्नल आव द ओरियंटल इंस्टोट्यूट बड़ौदा, भाग १५, संख्या १, सितंबर १९६५

ऐन एक्सपोजीशन आव द आश्विन सूक्त आव द ऋग्वेद मंत्र १-३४--बी० एस० अग्रवाल। ऋग्वेदीय आश्विन सूक्त की एक व्याख्या।

क्रिटिकल एक्जामिनेशन आव सम रीडिंग्स आव बाणभट्ट'ज कादंबरी—आर० सी० हाजरा। बाणभट्ट की कादंबरी के वैज्ञानिक पाठों का परीक्षण।

*

समीक्षा

व्यवधान

पारिवारिक उपन्यास; लेखिका सुश्री शांतिकुमारी वाजपेयी; प्रकाशकस्वयं; वितरक लोकभारती प्रकाशन, १५-ए० महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद; पृ० ५२१, प्रथम सं०, मूल्य ८)।

पुरुष और नारी के नैसर्गिक आकर्षण प्रतिकर्षण, घात प्रतिघात पर आधारित यह उपन्यास अपनी वर्णनशैली, घटनाक्रम, उत्कर्ष और पर्यवसान में अत्यंत रोचक और सफल कृति है। नायक जलद संपन्न और सुशिक्षित होते हुए भी वाग्दत्ता नायिका चंदो की चचेरी बड़ी बहन चपला के प्रति आकृष्ट होता है। यद्यपि चंदो उसके प्रति – अपने भावी पति के प्रति – संपूर्ण भाव से अनुरक्त है, तथापि शील और संकोच से युक्त हिंदू कन्या के संस्कार और नवीन अभिभाविका एवं होनेवाली सास मणि के मर्यादित, सुसंस्कृत एवं स्नेहपूर्ण अनुशासन उसे नितांत संयत रखते हैं। दूसरी ओर एम० ए० की छात्रा चपला यौवन की उद्दाम आकांक्षाओं और अभिलाषाओं की प्रतिमूर्ति है जो अपनी इच्छाओं की वशवर्तिनी होकर जलद को आत्मसमर्पण कर देती है, बल्कि कहना चाहिए, जलद से आत्म-समर्पण करा लेती है। चंदो उनके रात्रिमिलन और सहवास की घटना जान लेती है और फिर उन दोनों को परिणयसूत्र में आबद्ध कराती है; पर दैवदुर्विपाक से चपला कैंसर जैसे असाध्य रोग से ग्रस्त हो जाती है। आपरेशन द्वारा उसे रोग से मुक्ति तो मिल जाती है, किंतु वह संतानोत्पत्ति के निमित्त सदैव के लिये अक्षम हो जाती है। जलद अपने पिता का एकलौता चिरंजीवी है। वंशपरंपरा की समाप्ति की आशंका से चपला स्वयं प्रस्ताव करती है कि अब चंदो का विवाह जलद से तुरंत हो जाना चाहिए। मणि को तो जैसे अयाचित निधि मिल जाती है। चारों ओर की लोकलज्जा और अपनी मातृस्थानीया मणि के आदेश से चंदो जलद से विवाह भी करती है, परंतु हृदयदेश मे पूर्वाधिष्ठित देवाधिदेव मुरारी की मूर्ति के स्थान पर स्वामी रूप में जलद की प्रतिष्ठा करने के बलात् प्रयत्न की उसपर ऐसी प्रतिकूल और दुर्दांत प्रतिक्रिया होती है कि विवाहोपरांत उसका तत्काल प्राणांत हो जाता है।

उपन्यास की सशक्तता, चरित्रों के विकासक्रम, घटनावली की स्वाभाविक परिणति और लेखनशैली की प्रवाहपूर्ण प्रांजलता को देखकर यह नहीं भासित

होता कि यह कृति इस क्षेत्र में लेखिका का प्रथम प्रयास है। लेखिका को जो साफल्यलाभ हुआ है, वह क्रम आगे भी चालू रहे, इसकी आकांक्षा स्वाभाविक है। पुस्तक की छपाई सफाई उत्कृष्ट है।

—सुधाकर पाँडेय

प्रासाद मंडन

सूत्रधार मंडन रचित देवालय निर्माणशास्त्र, हिंदी अनुवाद सहित, अनुवादक और संपादक—पंडित भगवानदास जैन, जयपुर;

प्रकाशक—बी० एस० शर्मा, बी० एस-सी०, विशारद, मोतीसिंह का रास्ता, जयपुर; पृष्ठसंख्या २४४+२२८; मूल्य १६)।

विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दि में सं० १४९० से १५२५ तक चित्तौड़ के राणा कुंभकर्ण (कुंभ) ने अपने राज्य में अनेक प्रकार से भारतीय संस्कृति का संवर्धन किया। उन्होंने ही चित्तौड़ में प्रसिद्ध कीर्तिस्तंभ का निर्माण कराया। उनके राजकीय स्थपतियों में सूत्रधार मंडन भी थे। उन्होंने कई शिल्पग्रंथों की संस्कृत में रचना की जिनमें प्रासादमंडन विशेष प्रसिद्ध है। उसमें उत्तरी भारत में स्थापत्य की नागरशैली पर बननेवाले देवालयों के निर्माणनियमों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। भूमि से शिखर तक मंदिरों के सभी अंगों के आकार और अनुपात इस ग्रंथ में बतलाए गए हैं। राजस्थान के प्रसिद्ध विद्वान पंडित भगवानदास जैन जिन्होंने प्राचीन वास्तुशास्त्रों का अध्ययन सुप्रसिद्ध मंदिरों का अवलोकन करके किया है ने सन् १९६२ में इस ग्रंथ का गुजराती भाषा में अनुवाद किया था। अब १९६५ में इन्होंने इसका हिंदी अनुवाद प्रकाशित किया है।

मूल संस्कृत पाठ के नीचे श्लोकों का हिंदी अनुवाद सरल भाषा में किया गया है और उसे स्थान स्थान पर टिप्पणियाँ देकर समझाया गया है। मंदिरों के विविध अंगों के आकार और अनुपात रेखाचित्र साथ लगाकर स्पष्ट किए गए हैं। प्रासादमंडन में दिये निर्माणविधियों और नियमों की तुलना अन्य प्रसिद्ध वास्तुशास्त्रों जैसे अपराजित पृच्छा, दीपार्णव और क्षीरार्णव से उद्धरण देकर की गई है। भारत के विख्यात प्राचीन मंदिरों के फोटो चित्र भी देकर ग्रंथ को रोचक बना दिया गया है।

संपादक ने अपनी प्रस्तावना में भारतीय मंदिर-निर्माण-कला का विवेचन किया है। ग्रंथ की भूमिका वाराणसी के पुरातत्वविद्या के विद्वान डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखी है जिसमें भारतीय वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों का संक्षिप्त वर्णन है।

ग्रंथ में दो परिशिष्ट हैं। परिशिष्ट संख्या १ में अपराजित पृच्छा के सूत्र १५८ में दिए केसरी आदि प्रासाद के २५ भेदों का वर्णन है। परिशिष्ट सं० २ में जैन प्रासादों के विविध भेद दिए गए हैं। अंत में ग्रंथ में प्रयुक्त लगभग ८०० पारिभाषिक शब्दों की सूची अकारादि क्रम से है और उनके अर्थ भी हिंदी में दिए गए हैं। इससे प्रकट होता है कि विद्वान् संपादक ने प्राचीन शिल्पी पारि-भाषिक शब्दों को भलीभाँति समझा है। यह सूची प्राचीन वास्तुशास्त्रों का अध्ययन करनेवालों को बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

वास्तव में यह ग्रंथ हिंदी साहित्य में इस विषय की श्रेष्ठ कृति मानी जाने योग्य है।

—ब्रजमोहनलाल

जैन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि

लेखक—डा० प्रेमसागर जैन; प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; पृष्ठ संख्या २४८; मूल्य ६)।

प्रस्तुत ग्रंथ लेखक के शोधनिबंध 'हिंदी के भक्ति काव्य में जैन साहित्यकारों का योगदान' का प्रथम खंड है। इसमें जैनधर्म के भक्तितत्व और भक्तिचर्या पर व्यापक दृष्टि से विचार किया गया है। भारतीय भक्तिसाधना के मूल्यांकन की दृष्टि से जैनभक्त कवियों का योगदान महत्वपूर्ण एवम् विवेचनीय है। जैनों की भी एक भक्तिपरंपरा रही है और हिंदी के जैन भक्त कवियों पर उसी पूर्वकालीन परंपरा का प्रभाव रहा है इसी का अनुशीलनात्मक अध्ययन ग्रंथ में किया गया है। प्रारंभ में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के प्राक्कथन के अनंतर लेखक की विस्तृत भूमिका है जिसमें जैनभक्ति परंपरा और उसके विकासक्रम का निरूपण है। भक्ति एक प्राचीन साधनामार्ग है जिसे सभी स्वीकारते हैं। जैनभक्ति के दृष्टिकोण से प्रस्तुत ग्रंथ के विवेच्य विषय को लेखक ने पाँच खंडों में विभाजित किया है, जिसमें क्रमशः १. जैनभक्ति का स्वरूप; २. जैनभक्ति के अंग; ३. जैनभक्ति के बारह भेद; ४. आराध्य देवियाँ तथा ५. उपास्यदेव विस्तरेण विवेचित हैं। अंत में एक महत्वपूर्ण सहायक ग्रंथसूची और शब्दानुक्रमणी है। पुस्तक में संकलित एवं विवेचित सामग्री उपादेय और ज्ञानवर्द्धक है तथा सभी साहित्यिक भाषा के छात्रों के लिये हितकर है।

अक्क महादेवी के वचन

अनु०—श्री जी० एम० उमापति शास्त्री; प्रकाशक—कर्नाटक प्रांतीय हिंदी प्रचार सभा, धारवाड़; पृष्ठ संख्या १३८; मूल्य १)५०।

बसवेश्वर के संप्रदाय में दीक्षित कन्नड साहित्य की लेखिकाओं में तेजस्विनी और वीर तपस्विनी रुद्रकन्या अक्का महादेवी कन्नड साहित्य की मीराबाई हैं। मीरा के गिरधर गोपाल की तरह इन्होंने परशिव को पतिरूप में माना और सर्वत्र उनका दर्शन किया तथा धर्म की क्रांति के लिये दरदर घूमती हुई अपने वचनामृत से लोगों को पुनरुज्जीवित करती रहीं। उन्हीं के चुने हुए ६० वचनों का संग्रह और हिंदी अनुवाद प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। मूल वचन देवनागरी लिपि में है। इससे हिंदी के माध्यम से कन्नड भाषा का परिचय पाने में सहायता मिलती है। प्रारंभ में ६८ पृष्ठों की भूमिका है जिसमें कन्नडे प्रदेश, कन्नड भाषा, साहित्य, वीरशैव धर्म, के तत्व और साहित्य, अक्का महादेवी की जीवनी और व्यक्तित्व का संक्षेपेण परिचय है। हिंदी भाषाभाषी जिज्ञासुओं के लिये कन्नड साहित्य का संक्षेपात्मक यह परिचय उपादेय है। हिंदी भाषा में अक्का महादेवी पर लिखी यह प्रथम कृति है जिससे हिंदी भाषा का भंडार समृद्ध होता है। इस कृति को हिंदी में प्रस्तुत करने के लिये लेखक श्री उमापति शास्त्री का परिश्रम सराहनीय है।

सती पद्मावती (महाकाव्य)

लेखक—रावत हिम्मतसिंह 'साहित्यरंजन'; प्रकाशक—भारतीय भवन, भेंस..डगढ़, राजस्थान; पृष्ठ संख्या ३३०; मूल्य ५)।

[illegible] महाकाव्य १२ सर्गों में है जिसमें रानी पद्मावती और नागमती का जौहर वर्णित है। यह काव्य जायसी के पद्मावत के आधार पर है अतः कथा वही है पर लेखक ने पद्मावत के हिरामन और सारिका को व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। पद्मावती का जौहर एक ऐतिहासिक तथ्य है और लेखक ने सरल, सरस, ओजमयी भाषा में काव्यानुरूप विविध छंदों का सहयोग लेते हुए इसे पूर्ण किया है। साथ ही चित्तौड़ संबंधी और भी ऐतिहासिक तथ्य काव्यात्मक रूप में संकलित कर दिया है। अंत में परिशिष्ट है जिसमें लेखक ने पूर्वजों की सादर चर्चा की है। अनेक ज्ञातव्य तथ्यों से युक्त होने के कारण शिक्षाप्रद यह महाकाव्य सभी लोगों के लिये समान रूप से उपादेय और पठनीय है।

—विश्वनाथ त्रिपाठी

सभा के कुछ कोश—

लघुतर हिंदी शब्दसागर—संपा० पं० करुणापति त्रिपाठी। मूल्य ५.००

लघु हिंदी शब्दसागर—संपा० पं० करुणापति त्रिपाठी। मूल्य ११.००

संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर—संपा० श्री रामचंद्र वर्मा। मूल्य १८.००

हिंदी शब्दसागर—संपूर्ण कोश १० खंडों में पूर्ण करने की योजना है। इसका प्रथम खंड प्रकाशित हो गया है। दूसरा खंड प्रेस में है। अन्य खंडों का संपादनकार्य समाप्त हो चुका है।

हि... दी विश्वकोश ... प्रकाशित ... ही प्रकाशित ... विशेष संस्करण

१
२०
३
४
५
६
७
८